# वाणी-सरोवर

अप्रैल, १९७३

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ ३

[ भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक) ]

# वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ।।

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी
प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—४ अप्रैल, १९७३ अंक—२

## विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल
प्रि. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड़—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.)
सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिळ—डॉ०पी० जयरामन,हिन्दी आफ़िसर रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया
वी. नटराजन, एम. काम.

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पाली—डॉ० हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.

पारसी—सुश्री नाजू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई
सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली
जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सिं.स.

हिन्दी—चन्द्रभानु मिश्र 'प्रभाकर', एम. ए., बी. एड. (हि० लि०)

एक प्रति २·५०

वार्षिक मूल्य १०·००

# विषय-सूची


| क्रम | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | विद्वत्परिषद् | ... ... | १ |
| २ | विषय-सूची | ... ... | २ |
| ३ | सम्पादकीय | नन्दकुमार अवस्थी | ३-४ |
| ४ | (फ़ारसी) | सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या। (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी. | १७७-१८४ |
| ५ | (मलयाळम) | कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि. | १८५-१९२ |
| ६ | (बंगला) | कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार | १८५-१९२ |
| ७ | (तमिऴ) | तिरुक्कुऱळ्—सानु० लिप्य०—श्री डॉ० जयरामन, सुश्री गोमती अय्यर; पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः) | १६१-१६८ |
| ८ | (उर्दू) | गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी | ३३-४० |
| ९ | (अ़रबी) | रियाज़ुस्सा़लिहीन (ज़ादें सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी | १४५-१५२ |
| १० | (ओड़िया) | वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक | १६१-१६८ |
| ११ | (मराठी) | श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी | १२१-१२८ |
| १२ | (असमिया) | माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार | ९७-१०४ |
| १३ | (गुजराती) | गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई | ८९-९६ |
| १४ | (तेलुगु) | रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्. डी. | ८१-८८ |
| १५ | (सिन्धी) | सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम. ए. सा०र० | ८१-८८ |
| १६ | (कन्नड़) | पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी. | ६५-७२ |
| १७ | (नेपाली) | भानुभक्त रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य | ६५-७२ |
| १८ | (कश्मीरी) | रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी. | ७३-८० |
| १९ | (गुरमुखी) | श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी. | ४१-४८ |
| २० | (संस्कृत) | श्रीरामचरितमानस संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) श्री जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., साहित्यरत्न | ४१-४८ |

# सम्पादकीय

## भाषा-सेतुकरण के प्रति राजनेताओं का कर्तव्य !

लगभग साल-भर पहले, मार्च, १९७२ की बात है जब रामचरितमानस के ओड़िया लिप्यन्तरण और ओड़िया-अनुवाद की व्यवस्था के सम्बन्ध में कटक जाने का अवसर आया था। कटक, भुवनेश्वर और पुरीधाम के दर्शन के अलावा पुण्यश्लोक स्वर्गीय गोपबन्धु द्वारा संस्थापित 'समाज' दैनिक के सम्पादक श्रीराधानाथ रथ-जैसे इस वृद्धावस्था में भी अहर्निश श्रम करनेवाले एकनिष्ठ समाजसेवी महापुरुष से साक्षात् का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भुवन वाणी ट्रस्ट के, भारत में व्यवहृत प्रायः सभी भाषाओं के सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण के विशाल मूर्तिमान् कार्य को देख कर हठात् उनके मुख से शब्द निकल पड़े, "ओह ! हम लोग तो सोचते ही रह गये, आपने अकेले इतना सब कर डाला !"

तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीविश्वनाथ दास से भेंट का अवसर मिला। किसी समय वे उत्तरप्रदेश के राज्यपाल थे; उस समय अरबी कुर्आन और बँगला कृत्तिवास रामायण के सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण-जैसे मेरे कार्यों को वे देख चुके थे। अब उसके बाद भुवन वाणी ट्रस्ट की स्थापना और उसके मौजूदा बहुभाषाई कार्यों को देखकर, वे विमुग्ध हो उठे। ओड़िया के सुप्रसिद्ध 'बैदेहीश-विलास' की समता का आलंकारिक और अद्भुत ग्रंथ, संस्कृत को छोड़कर, शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा में हो। 'बैदेहीश-विलास' के हिन्दी अनुवाद-सहित देवनागरी-लिप्यन्तरण को देखते ही, वे उसके पदों को आनन्द-विभोर होकर गाने लगे। उन्होंने गृह, शिक्षा और अपने निजी सचिवों की एक बैठक बुलाकर मुझे भी उसमें सम्मिलित होने का गौरव प्रदान किया। सचिवों से उनका यह प्रश्न था कि हिन्दीभाषी प्रदेश से ओड़िया तथा भारत में प्रचलित अन्य भाषाओं का इतना कार्य एक व्यक्ति और एक संस्था के द्वारा इतने परिमाण में हुआ है; बोलिए, आपने अपनी क्षेत्रीय भाषा को ही अखिल देश में प्रसारित करने के लिए अब तक क्या किया ? मुख्यमंत्री श्रीविश्वनाथ बाबू ने अपने राज्य में हमारे कार्यों को प्रोत्साहन देने के लिए सम्बन्धित सचिवों को आदेश भी दिया था; किन्तु मंत्रिमण्डल बदल जाने से वह सब व्यर्थ हो गया।

उसी दौरान, राज्य शिक्षा निदेशक (डी० पी० आई०) महोदय से भी अपने लिप्यन्तरण-ग्रंथों को लेकर मैंने भेंट की। देवनागरी अक्षरों के ग्रंथों को देखते ही वे बरस पड़े कि "(१) भले ही बंगाल में हिन्दी-विरोध का उग्र प्रदर्शन हो, किन्तु ओड़िया प्रदेश प्रत्यक्ष शान्त होते हुए भी कम क्षुब्ध नहीं है कि हम पर हिन्दी क्यों लादी जा रही है ! (२) जब सारे देश में अंग्रेज़ी से, बिना असुविधा और आयास के काम चल जाता है, तो हिन्दी का हम पर लदान क्यों ?" उनकी यह प्रतिक्रिया कटु होने पर भी अज्ञानवश और जल्दबाज़ी की थी—यह समझने में मुझे भ्रम नहीं रहा।

मैंने उनकी उत्तेजना को शान्त करते हुए निवेदन किया कि भगवन् ! एक बार हमारे इन ग्रंथों और वाणीसरोवर त्रैमासिक पर ध्यान तो दीजिए ! देवनागरी-कलेवर में, हिन्दी से इतर आपकी ओड़िया, बंगला आदि सभी भारतीय भाषाओं को हम

सारे देश में प्रसारित कर रहे हैं, हिन्दी-भाषी क्षेत्रों पर भी उन्हें लाद रहे हैं, अथवा हिन्दी आप पर लादी जा रही है? आपके 'बैदेहीशविलास'-जैसे अद्वितीय ग्रंथ और उसके आलंकारिक ओड़िया साहित्य का साक्षात् सारे देश को सुलभ हो रहा है, अथवा आपकी ओड़िया भाषा को संकुचित और विक्षत किया जा रहा है? मेरे इस निवेदन पर उन्होंने ध्यान से देखा तो क्षणमात्र में आवेशमुक्त होकर उन्होंने कहा, 'हिन्दी अक्षरों को देखने-मात्र से ही मुझे भ्रम हुआ था। निस्सन्देह आपने हमारी सभी क्षेत्रीय भाषाओं के अपार प्रसार का भार लिया है।'

तब उनकी 'अंग्रेज़ी से काम चल जानेवाला' दूसरी बात को मैंने उठाया। "श्रीमन्! यदि भुवनेश्वर से पटना, लखनऊ, जयपुर, भूपाल, बंबई आदि राजधानियों में अवस्थित राज्य-कार्यालयों में दौरा करके सरकारी कार्य सवाँर लाना ही कार्य है, और इन राज्य-कार्यालयों ही का नाम राष्ट्र है, तब तो निस्सन्देह अंग्रेज़ी सुविधापूर्ण सम्पर्क भाषा है। किन्तु यदि राष्ट्र इनकी अपेक्षा कुछ अन्य अथवा विशाल है, तो अंग्रेज़ी की दशा अति दयनीय हो जायगी। आज आप अपने नगर कटक में ही मेरे साथ चलिए। सकल श्रमिक, वणिक और सर्वसाधारण जनता क्या मुझको अपनी बात अंग्रेज़ी में समझा सकेगी? अथवा मैं यदि उनसे अंग्रेज़ी में अपने विचार व्यक्त करूँ तो क्या वे सब समझ लेंगे? मेरे इस कथन पर वे मूक हो रहे। बल पाकर मैंने पुनः निवेदन किया और उन्होंने उसे पूरी तौर पर स्वीकार किया कि जहाँ यह ज़रूरी है कि प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा अपनी लिपि में, अपने क्षेत्र में फलती-फूलती रह कर देवनागरी लिपि के कलेवर में सारे देश में उत्तरोत्तर सुपरिचित होती जाय, वहाँ यह भी अनिवार्य है कि विभिन्न क्षेत्रों के जन-साधारण को समीप लाने, परस्पर काम चलाने, सभी भाषाओं के सत्साहित्य और सद्विचारों को सार्वभौम बनाने के लिए हिन्दी भाषा—राष्ट्रभाषा को जानना प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए ज़रूरी है।

अब विचारणीय है कि जब बिना किसी विद्वेष के, केवल भ्रमवश शिक्षा-निदेशक महोदय को यह धोखा हो सकता है, तब सामान्य क्षेत्रीय जनता का भ्रमित होना क्या आश्चर्य है? इस निर्मूल और सर्वघातक भाषा-सम्बन्धी विभ्रम का निवारण कौन करे? एक ही उत्तर है कि वे राजनेता—चाहे वे जनता में कार्य करते हों, अथवा विधायक और संसदसदस्य के रूप में; उनका यह परम कर्तव्य है कि अपने क्षेत्र की जनता में भाषा-सेतुकरण की यह उदात्त भावना जाग्रत करें। वे उनके प्रतिनिधि हैं; उनके कल्याण का व्रत लेकर, उनके मतदान की बदौलत, सम्मान-प्राप्त हैं; केन्द्रीय शासन की भी, राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्र-समन्वय की दृष्टि से, भाषा और लिपि-विनिमय की घोषित नीति है; अतः उसके प्रचार-प्रसार में लगना उनका पावन कर्तव्य है। और यदि वे इस भाषाई कर्तव्य से उदासीन रहते हैं; अथवा कभी-कभी सस्ती लोकप्रियता के लोभ में पड़कर, उलटे भाषा-विद्वेष का बीज वपन करते हैं, तो वे समाज के विरोधी हैं, केन्द्र-शासन की नीति के विरोधी हैं, और राजनेता के पद के सर्वथा अनुपयुक्त और कभी-कभी समाज-हित के घातक भी हैं।

भगवान् ने उनको सुअवसर प्रदान किया है। वे उसका समुचित उपयोग करके पुण्यात्मा और यशस्वी बनें।

नमो ब्रह्मणे । नमस् ते वायो ! त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि। तन् मामवतु, तद् वक्तारमवतु । अवतु माम्, अवतु वक्तारम् ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ॥ १ ॥

अनु०–मित्र (सूर्यदेव) हमारे लिए सुखकर हो, वरुण हमारे लिए सुखकर हो, अर्यमा हमारे लिए सुखकर हो, इन्द्र तथा बृहस्पति हमारे लिए सुखकर हों, विस्तीर्ण पादविक्षेप (डग) वाला विष्णु हमारे लिए सुखकर हो ।

ब्रह्म को नमस्कार है । हे वायो ! तुम्हें नमस्कार है । तुम्हीं प्रत्यक्ष ब्रह्म हो । तुम्हीं को मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, ऋत कहूँगा, सत्य कहूँगा । वह मेरी रक्षा करे, वह वक्ता (उपदेष्टा, आचार्य) की रक्षा करे । रक्षा करे मेरी, रक्षा करे वक्ता की ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!॥ १ ॥

॥ इति शीक्षावल्ली ॥

# ब्रह्मानन्दवल्ली

## प्रथमोऽनुवाकः

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!![1]

अनु०—[परमात्मा] हम [आचार्य और शिष्य] दोनों की साथ-साथ रक्षा करे। हम दोनों का साथ-साथ पालन करे। हम दोनों साथ-साथ विद्या-सम्बन्धी सामर्थ्य प्राप्त करें । हम दोनों का पढ़ा हुआ तेजस्वी हो । हम दोनों द्वेष न करें ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

---

१ इस शान्ति पाठ की टीका 'सिर्रे अक्बर' में उपलब्ध नहीं।

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाऽभ्युक्ता—'सत्यं, ज्ञानमनन्तं[1], ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' इति ।

तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नात् पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तस्येदमेव शिरः, अयं दक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति—॥ १ ॥

अनु०—ब्रह्मवेत्ता परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । उस के विषय में यह [श्रुति] कही गयी है—

'सत्य, ज्ञान, और अनन्त ब्रह्म को जो बुद्धिरूप परम आकाश में निहित जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ-साथ समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है ।'

उस इस आत्मा से ही आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधिआँ, ओषधिओं से अन्न, और अन्न से पुरुष । वह यह पुरुष अन्न-रस-मय ही है । उस का यही शिर है, यह दक्षिण पक्ष है, यह वाम पक्ष है, यह आत्मा है, यह पुच्छ (नीचे का भाग) प्रतिष्ठा है । उस के विषय में ही यह श्लोक है-(१)

सि० अ०—ब्रह्मवेत्ता परम पद प्राप्त करता है और ब्रह्म हो जाता है । वेद के एक अन्य मन्त्र में भी उल्लिखित है—

'ब्रह्म सत्य है, ज्ञानस्वरूप है, अनन्त है । कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ वह न हो, कोई काल ऐसा नहीं जब वह न हो, कोई दिशा नहीं जिस में वह न हो । वह बुद्धि-नामक हृदय-गुहा में प्रकट और प्रकाशित है । ऐसे ब्रह्म को जो जान लेता है—उस ब्रह्म को जो सर्वज्ञ है और जिस में सभी कामनाएँ निहित हैं—वह साक्षात् वही (ब्रह्म) बन कर सारी कामनाएँ प्राप्त कर लेता है ।'

---

१ 'अनन्तं' के स्थान पर 'आनन्दं' होता तो स्वारस्य अधिक होता । तब 'सच्चिदानन्द' रूप निष्पन्न हो जाता ।

ब्रह्म आत्मस्वरूप है। उस से प्रथम भूताकाश प्रकट हुआ, भूताकाश से वायु प्रकट हुआ, वायु से अग्नि प्रकट हुआ, अग्नि से जल प्रकट हुआ, जल से पृथिवी प्रकट हुई, पृथिवी से ओषधिआँ प्रकट हुईं, ओषधिओं से अन्न प्रकट हुआ, अन्न से वीर्य प्रकट हुआ, वीर्य से पुरुष और सभी प्राणी प्रकट हुए। जब पुरुष और सभी प्राणी अन्न के रस से प्रकट हुए, [तो सब] अन्न-रस ही है। जीवात्मा जो पक्षी के सदृश है उस का साक्षात् मस्तक है। दाहिनी भुजा ही उस का दाहिना पक्ष है, बायीं भुजा उस का बायाँ पक्ष है; उस का वक्षःस्थल, जिस में हृदय है और उस हृदय में जीव है, उस पक्षी का वक्षःस्थल, आत्मा, और हृदय है; नाभि से नीचे का भाग उस पक्षी की पूँछ के समान है, जो पूँछ उस का वास-स्थान है। इसी का अनुहरण यह वेदमंत्र भी करता है—[१]

### द्वितीयोऽनुवाकः

'अन्नाद् वै प्रजाः प्रजायन्ते याः काश् च पृथिवीꣳ श्रिताः।
अथो अन्नेनैव जीवन्ति, अथैनदपि यन्त्यन्ततः।[1]
अन्नꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात् सर्वौषधमुच्यते।
सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते।
अन्नꣳ हि भूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात् सर्वौषधमुच्यते।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते, जातान्यन्नेन वर्धन्ते।
अद्यतेऽत्ति च भूतानि, तस्मादन्नं तदुच्यते' इति।[2]

तस्माद् वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः, व्यानो दक्षिणः पक्षः, अपान उत्तरः पक्षः, आकाश आत्मा, पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति– ॥ १ ॥

अनु०–'जो भी प्रजाएँ पृथिवी के आश्रित हैं वे अन्न से ही उत्पन्न होती हैं, अन्न से ही जीती हैं, और अन्त में उसी में लीन हो जाती हैं। क्योंकि अन्न ही प्राणियों में बड़ा है, इसी से वह सर्वौषध कहा

---

१ यहाँ तक मैत्रायण्युपनिषद् ६.११ में भी द्रष्टव्य है।

२ 'अन्नाद् भूतानि' से यहाँ तक मैत्रायण्युपनिषद् ६.१२ में भी द्रष्टव्य है।

जाता है। जो लोग अन्न ही को ब्रह्म मान कर उपासना करते हैं वे निश्चय ही सम्पूर्ण अन्न प्राप्त करते हैं। क्योंकि अन्न ही प्राणियों में बड़ा है, इसलिए वह सर्वौषध कहलाता है। अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर अन्न से ही बढ़ते हैं। अन्न प्राणियों द्वारा खाया जाता है और वह उन्हें खाता है, इसी से वह "अन्न" कहा जाता है।'

उस इस अन्नरसमय [पिण्ड] से भिन्न उस के भीतर रहने वाला प्राणमय कोश है। उस से यह (अन्नमय कोश) परिपूर्ण है। वह यह (प्राणमय कोश) भी पुरुषाकार ही है। उस (अन्नमय कोश) की पुरुषाकारता के अनुसार ही यह भी पुरुषाकार है। उस का प्राण ही सिर है, व्यान दक्षिण पक्ष है, अपान उत्तर पक्ष है, आकाश आत्मा (मध्यभाग) है, और पृथिवी पुच्छ-प्रतिष्ठा है। उस के विषय में ही यह श्लोक है-(१)

सि० अ०—पृथिवी पर स्थित सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से जीवित रहते हैं, अन्न में लीन हो जाते हैं। इसी कारण अन्न भूतों में श्रेष्ठतम है और अन्न सब का भेषज है। जो कोई अन्न की ब्रह्मभाव से उपासना करता है, उसे सभी उत्तम अन्नों की प्राप्ति होती है। चूंकि अन्न सब से श्रेष्ठ है, सब का भेषज है, सभी प्राणी उसी से उत्पन्न होते हैं, उसी से बढ़ते हैं, उसे सभी खाते हैं, और वह सभी को खाता है, इसी कारण अन्न को 'अन्न' कहते हैं, अर्थात् सब का खाद्य और अत्ता। अतः शरीर अन्नमय कोश है, और अन्नमय कोश में प्राणमय कोश है, और प्राणमय कोश में यह शरीर जो अन्नमय कोश है पूर्ण है। शरीर जैसा है प्राण भी उस में वैसा ही होता है। प्राणवायु शरीर के मस्तक के समान है, व्यानवायु दाहिनी भुजा के समान है, उदानवायु बायीं भुजा के समान है। समानवायु उस के आत्मा के समान है, अर्थात् जैसे जीव समस्त शरीर में पूर्ण है [वैसे ही] समान वायु भी समस्त शरीर में पूर्ण है। पृथिवी उस की पूंछ और उस के आश्रयस्थान के समान है। इसी के अनुसार एक वेदमंत्र भी है--[१]

### तृतीयोऽनुवाकः

'प्राणं देवा अनु प्राणन्ति, मनुष्याः, पशवश् च ये।
प्राणो हि भूतानामायुः, तस्मात् सर्वायुषमुच्यते।
सर्वमेव त आयुर् यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते।
प्राणो हि भूतानामायुः, तस्मात् सर्वायुषमुच्यते' इति।

तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद् वा एतस्मात् प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः, ऋग् दक्षिणः पक्षः, सामोत्तरः पक्षः, आदेश आत्मा, अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति– ॥ १ ॥

अनु०–'देवगण प्राण के साथ ही प्राणन-क्रिया करते हैं, तथा जो मनुष्य और पशु [आदि] हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है, इसलिए वह "सर्वायुष" कहलाता है। जो प्राण की ब्रह्मरूप से उपासना करते हैं वे पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है, इसलिए वह "सर्वायुष" कहलाता है।'

उस पूर्वोक्त (अन्नमय कोश) का यही देही आत्मा है। उस इस प्राणमय [कोश] से भिन्न अन्तरात्मा मनोमय [कोश] है। उस से यह पूर्ण है। वह यह [मनोमय कोश] पुरुषाकार ही है। उस (प्राणमय कोश) की पुरुषाकारता के अनुसार ही यह पुरुषाकार है। यजुः ही उस का शिर है, ऋक् दक्षिण पक्ष है, साम उत्तर पक्ष है, आदेश आत्मा है, अथर्वाङ्गिरस पुच्छ-प्रतिष्ठा है। उस के विषय में ही यह श्लोक है–' (१)

सि० अ०—प्राण अन्न का रस है। उसी से इन्द्रियों के सभी देवता अपने-अपने नियत कार्य सम्पन्न करते हैं और सभी देवता, मनुष्य, और पशु प्राण ही से परिचालित होते हैं। इसी कारण प्राण सब का जीवन है। जो कोई प्राण को ब्रह्म जानकर उस की उपासना करता है वह प्राकृतिक आयु लाभ करता है। चूँकि [प्राण] सब का जीवन है, अतः सब की आयु की अवधि प्राण से ही प्रकट होती है। शरीर का कोश भी अन्नमय है, उस का आत्मा प्राणमय कोश है जो साक्षात् प्राण ही है। प्राणमय कोश में मनोमय कोश व्याप्त है जो साक्षात् मन ही है। वह भी एक पक्षी के समान है: यजुर्वेद उस के सिर के समान है, ऋग्वेद उस के दक्षिण पक्ष के समान है, सामवेद उसके वाम पक्ष के समान है, वेदविधि के अनुसार कर्म का अनुष्ठान उस के आत्मा के समान है, अथर्ववेद उसकी पूँछ और आश्रयस्थान के समान है। इसी के अनुसार एक अन्य वेदमंत्र भी है—[१]

चतुर्थोऽनुवाकः

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह,
आनन्दं ब्राह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन' इति ।

तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद् वा एतस्मान् मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयस्, तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धैव शिरः, ऋतं दक्षिणः पक्षः, सत्यमुत्तरः पक्षः, योग आत्मा, महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति–।। १ ।।

अनु०–'जहाँ से, न पा कर, मन सहित वाणी लौट आती है उस ब्रह्मानन्द को जानने वाला पुरुष कभी भय को प्राप्त नहीं होता ।'

वही [मनोमय कोश] उस अपने पूर्ववर्ती [प्राणमय कोश] का देही आत्मा है । उस इस मनोमय से भिन्न इस का अन्तरात्मा विज्ञानमय [कोश] है । उस से यह पूर्ण है । वह यह [विज्ञानमय] भी पुरुषाकार ही है । उस [मनोमय] की पुरुषाकारता के अनुसार ही यह भी पुरुषाकार है । उस का श्रद्धा ही सिर है, ऋत दक्षिण पक्ष है, सत्य उत्तर पक्ष है, योग आत्मा (मध्यभाग) है, और बल पुच्छ-प्रतिष्ठा है । उस के विषय में ही यह श्लोक है–(१)

सि० अ०––ब्रह्म तक मन और वाणी की पहुँच नहीं, वे उस तक न पहुँचकर लौट आते हैं । जो कोई उस ब्रह्म को जो आनन्दमय है जानता है वह किसी सत्ता से नहीं डरता । मनोमय कोश जो साक्षात् मन ही है प्राणमय कोश, अर्थात् साक्षात् प्राण, का आत्मा है । मनोमय कोश, अर्थात् साक्षात् मन, में विज्ञानमय कोश है । वह भी एक पक्षी के समान है : श्रद्धा उस के सिर के समान है, सत्कर्मों का फल उस के दक्षिण पक्ष के समान है, सत्य उस के वाम पक्ष के समान है, ब्रह्म-समाधि अथवा योग उस की आत्मा के समान है, और समष्टि-बुद्धि उस की पूँछ और आश्रयस्थान के समान है । इसी के अनुसार एक अन्य वेदमंत्र भी है—[१]

पञ्चमोऽनुवाकः

'विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्माणि तनुतेऽपि च ।
विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।

विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद, तस्माच् चेन् न प्रमाद्यति,
शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुते' इति ।

तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद् वा एतस्माद् विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः, प्रमोद उत्तरः पक्षः, आनन्द आत्मा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति– ॥ १ ॥

अनु०–'विज्ञान यज्ञ का विस्तार करता है और कर्मों का भी विस्तार करता है । समस्त देव ज्येष्ठ विज्ञान-ब्रह्म की उपासना करते हैं । यदि [साधक] विज्ञान को ब्रह्म जान जान जाय और फिर उस से प्रमाद न करे, तो अपने शरीर के सारे पापों को त्याग कर वह समस्त कामनाओं (भोगों) को पूर्णतया प्राप्त कर लेता है ।'

यह [विज्ञानमय] ही उस अपने पूर्ववर्ती मनोमय [कोश] का देही आत्मा है । उस इस विज्ञानमय से भिन्न इस का अन्तरात्मा आनन्दमय [कोश] है । उस [आनन्दमय] से यह पूर्ण है । वह यह [आनन्दमय] पुरुषाकार ही है । उस (विज्ञानमय) की पुरुषाकारता के समान ही यह पुरुषाकार है । उस का प्रिय ही सिर है, मोद दक्षिण पक्ष है, प्रमोद उत्तर पक्ष है, आनन्द आत्मा है, और ब्रह्म पुच्छ-प्रतिष्ठा है । उसी के विषय में यह श्लोक है–(१)

सि० अ०––जो कोई ज्ञान-विज्ञान से युक्त है वही यज्ञ और अनुष्ठान कर सकता है । देवगण ज्ञान-विज्ञान को परब्रह्म जानकर उस की उपासना करते हैं । जो कोई ज्ञान-विज्ञान को परब्रह्म जानता है और उस विज्ञान से प्रमाद नहीं करता वह अपने सभी शारीरिक पापों को दूर कर अपनी सभी कामनाओं और अभिलाषाओं को प्राप्त कर लेता है । पञ्चम कोश आनन्दमय कोश है जो साक्षात् आनन्द है । वह विज्ञानमय कोश अर्थात् साक्षात् विज्ञान में निहित है और उस का आत्मस्थानी है । वह भी एक पक्षी के समान है : प्रेम उस के सिर के समान है, प्रेमपात्र से मोद की प्राप्ति उस के दक्षिण पक्ष के समान है, उस मोद का आधिक्य उस के वाम पक्ष के समान है, आनन्द उस की आत्मा के समान है, और ब्रह्म उस की पूँछ और आश्रयस्थान के समान है । इसी के अनुसार एक अन्य वेदमंत्र भी है—[१]

षष्ठोऽनुवाकः

'असन्नेव स भवति, असद् ब्रह्मेति वेद चेत्;
अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद, सन्तमेनं ततो विदुः' इति ।

तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य ।

अथातोऽनुप्रश्नाः–उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छती ३? आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित् समश्नुता ३ उ ?

सोऽकामयत–बहु स्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस् तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च । तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच् च त्यच् चाभवत्, निरुक्तं चानिरुक्तं च, निलयनं चानिलयनं च, विज्ञानं चाविज्ञानं च, सत्यं चानृतं च, सत्यमभवत् । यदिदं किञ्च तत् सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति— ।। १ ।।

अनु०–'यदि पुरुष "ब्रह्म असत् है" ऐसा जानता है तो वह असत् ही हो जाता है; और यदि ऐसा जानता है कि "ब्रह्म है" तो [ब्रह्मवेत्ता] उसे सत् समझते हैं ।'

उस पूर्वकथित (विज्ञानमय) का यही [आनन्दमय] देही आत्मा है ।

अब इस के अनन्तर ये अनुप्रश्न हैं—क्या कोई अविद्वान् मर कर उस लोक को प्राप्त हो सकता है ? अथवा कोई भी विद्वान् मर कर उस लोक को प्राप्त हो जाता है ?

उस [ब्रह्म] ने कामना की—'मैं बहुत हो जाऊँ' । उस ने तप किया । उस ने तप कर के यह जो कुछ है इस सब की रचना की । इसे रच कर वह इसी में अनुप्रविष्ट हो गया । इस में अनुप्रवेश कर वह सत् और त्यत् हो गया, परिभाषित और अपरिभाषित, आश्रय और अनाश्रय, चेतन और अचेतन, सत्य और असत्य हो गया । यह जो कुछ है उसे [ब्रह्मवेत्ता] 'सत्य' नाम से पुकारते हैं । उस के विषय में ही यह श्लोक है–(१)

पतिम्मूत्ऩायि माद्रितन्नुटॆ पुत्रन्मावर्कुं
पतिम्मूवाण्टु पिन्नॆ विद्ययुमभ्यसिच्चु । १०२
धृतराष्ट्ररुं दुरियोधनादिकळुमाय्
मतिमान्मारायुळ्ळ धर्म्मजादिकळ् वाणु । १०३
पिन्नॆयत्तरक्किल्लं वॆन्तिट्टु पुऱप्पॆट्टु
वन्नवराऱुमासं काननं तन्निल् वाणु । १०४
अन्ऩल्लो घटोत्कचनुण्टायितविट्टुन्नु
पिन्नॆयोराऱुमासमेकचक्रयिल् वाणु । १०५
पाञ्चालितन्नॆ वेट्टानन्ऩाळिलवळुमाय्
पाञ्चालपुरत्तिङ्कलोराण्टु वसिच्चार्पोल् । १०६
हस्तिनपुरत्तिङ्कल् पिन्नॆयुमोरुमिच्चि-
ट्टॆत्रयुं सुखत्तोटुमय्याण्टु कालं वाणु १०७
पिन्नॆयन्तिन्द्रप्रस्थमाकिय पुरि पुक्कु
मन्नवरिरुपत्तुमूवाण्टुकालं वाणु । १०८
चूतु तोट्विट्टुन्नु पन्तीराण्टटवियिल्
मेदिनीपालकन्मार् तापसराये वाणु । १०९
ओराण्टु विराटन्टॆ राजधानियिल् वाणो-
राऱुमेयऱियातॆ वेषच्छन्नन्मारायि । ११०
कॊल्पोटु शत्रुक्कळॆयॊक्कवेयोटुक्कीट्टु
मुप्पत्ताऱाण्टु भूमियटक्किवाणु पिन्नॆ । १११

---

तदनन्तर सबने तेरह वर्ष विद्याभ्यास किया। बुद्धिशाली युधिष्ठिर आदि धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदियों के साथ सुख से रहे। १०३ तत्पश्चात् जतु (लाक्षा) गृह के जलजाने से वहाँ से निकल कर छः महीने वन में रहे। उसी अवसर पर घटोत्कच का जन्म हुआ। तदनन्तर छः महीने एकचक्र नगरी में निवास किया। तदनन्तर पांचाली के साथ विवाह हुआ और उसके साथ सब लोग एक वर्ष तक पाञ्चालपुरी में रहे। उसके बाद पाँच वर्ष सब लोग बड़े मेल के साथ सुख से हस्तिनापुर में रहे। तदनन्तर इन्द्रप्रस्थ नामक नगर में प्रवेश कर सभी भूपाल तेईस वर्ष वहाँ रहे। फिर जुआ में हार कर वे बारह वर्ष वन में तापस के रूप में रहे। एक बरस विराट की राजधानी में वेश बदलकर उन्होंने अज्ञातवास किया। ११० तदनन्तर अपने सभी शत्रुओं को जीतकर छत्तीस बरस पृथिवी पर राज किया। तत्पश्चात् छः महीने के अन्दर अभिमन्यु के पुत्र को राजगद्दी पर बैठाकर स्वर्ग चले

मन्नवरारु मासं कौण्टभिमन्युजनें
मन्नवनाक्कि वाळिच्चमरपुरिपुक्कार् । ११२
नूट्टेट्टु वरिषवुमारुमासवुं चेन्नु
माट़लर्कुलकालनाय धर्म्मजनेंटो । ११३
जिष्णुविल् मून्नु मासं मूत्ततु कृष्णन् पिन्नें
कृष्णनिल् मून्नु मासं मूत्ततु बलभद्रन् । ११४
कृष्णनायवतरिच्चन्नुळ्ळ लीलकळुं
कृष्णभक्तन्माराय पाण्डवर्कथकळुं ११५
विष्णुतान्तन्नें वन्नु पिरन्न वेदव्यासन्
कृष्णनां द्वैपायनन् चोल्लिय कथयल्लो । ११६
अद्वैतोपाख्यानमां भारतं नूरायिरं
पद्यवुं पतिनेंट्टु पर्व्वमाय् तीर्त्तुकूट्टि । ११७
संभवपर्व्वं सभापर्व्ववुमारण्यवुं
पिन्पु वैराटपर्व्वमुद्योगमञ्चामतुं ११८
पिन्नेतु भीष्मपर्व्वमपरं द्रोणपर्व्वं
कर्ण्णपर्व्ववुं शल्यपर्व्ववुं सौप्तीकवुं ११९
स्त्रीपर्व्वं शान्तिपर्व्वमनुशासनीकवुं
शोभतेटीटुमश्वमेधिकपर्व्वं पिन्नें १२०
पुतिनञ्चामतु नल्लाश्रमवासपर्व्वं
पतिनाऱामतल्लो मौसलमाय पर्व्वं १२१

---

गये । इस प्रकार शत्रुवर्ग के नाशक धर्मज (युधिष्ठिर) एक सौ आठ बरस और छः महीने जीवित रहे । श्रीकृष्ण तो जिष्णु (अर्जुन) से तीन महीने बड़े थे और बलभद्र कृष्ण से तीन महीने बड़े थे । भगवान् ने कृष्ण के रूप में अवतार लेकर जो लीलाएँ कीं, उनको और कृष्णभक्त पाण्डवों की कथाओं को श्रीकृष्ण द्वैयापन वेदव्यासजी ने, जो साक्षात् विष्णु ही थे, अपनी महाभारत कथा में सुनाया है । यह भारत अद्वैतोपाख्यान है और यह एक लाख श्लोकों और अठारह पर्वों में समाप्त है । ११७
१ संभवपर्व, २ सभापर्व, ३ आरण्यपर्व, तदनन्तर ४ विराटपर्व, ५ पाँचवाँ उद्योगपर्व, तत्पश्चात् ६ भीष्मपर्व, फिर ७ द्रोणपर्व, ८ कर्णपर्व, ९ शल्यपर्व, १० सौप्तीक, ११ स्त्रीपर्व, १२ शान्तिपर्व १३ अनुशासनिक, और १४ शोभावाला अश्वमेधिक पर्व, पन्द्रहवाँ अच्छा आश्रमवासपर्व और १६ मौसलपर्व था, सतरहवाँ महाप्रस्थानपर्व और अन्त में

पतिनेळाकुं महाप्रस्थानं कळियुम्पोळ्
पतिनेट्टामतिङ्कल् स्वर्गारोहणमल्लो । १२२
अध्यायक्रमं चोल्लवानेत्रयु पेरुप्पमु-
ण्टत्रयेन्तिनु वेण्टियेन्नतुमरिञ्ञिल्ल । १२३
भारतं संक्षेपं ञानेप्पेरुमरियिच्चेन्
पारिटत्तिङ्कलुळ्ळ भक्तन्मार्क्करिवानाय् । १२४
नल्लतु चेय्युन्नोर्क्कु नल्लतु वरुमेन्नुं
नल्लतिल्लाकात्ततु चेय्तीटुन्नवर्क्केन्नुं । १२५
देवदेवेशनाय कृष्णने वळिपोले
सेविच्चालुळ्ळ फलमायतुमरिञ्ञीटाम् । १२६
इन्नि मटेन्तु कथ केळ्क्केण्टतेन्नु चोन्ना-
लेन्नालायतु चोल्लामेन्नेल्लां क्रमत्ताले १२७
वैशम्पायनमुनि जनमेजयनोटु
वैशिष्टयमुळ्ळ महाभारतकथासारं १२८
ओक्कवे चुरुक्कमायीवण्णं परञ्ञप्पोळ्
मुख्यनां नरपति जनमेजयन् चोन्नान् । १२९
अत्रयुं कौतूहलमुण्टितु केळ्क्कुन्तोरुम्
विस्तरिच्चरुळिच्चेय्तीटणं मटियाते । १३०
अन्नतु नरपति चोन्नतु केट्टु मुनि
नन्नायित्तेळिञ्ञुटनादियेयरियिच्चु । १३१
इङ्ङने सूतवाक्यं केट्टु शौनकमुनि
तिङ्ङिन मोदत्तोटु पिन्नेयुं चोद्यं चेय्तु । १३२

---

१८ स्वर्गारोहणपर्व है । अध्यायक्रम बतलाने में बहुत श्रम है और उसका क्या प्रयोजन होगा, यह भी स्पष्ट नहीं है । भारत का संक्षेप मैं पहले ही पृथिवी के भक्तों के लिए सुना चुका हूँ । जो भला करते हैं उनका भला होगा और जो बुरा करते हैं, उनको देवदेवेश कृष्ण की यथाविधि उपासना करने से क्या फल होगा, यह भी उससे मालूम हो जाता है । अब और क्या कथा सुनाना है ? कहो तो वह भी क्रम से सुनाऊँगा । १२७ जब मुनि वैशम्पायन ने वैशिष्टयवाली महाभारत की सारी कथा संक्षेप में जनमेजय को इस प्रकार सुनायी, तब नरपति ने कहा— इसको सुनते-सुनते बड़ा (मन में) कुतूहल होता है, इसलिए निःसंकोच इसे विस्तार से सुनाइए । नरपति की यह बात सुनकर मुनि ने प्रारम्भ

अक्कथयॆल्लां निनक्कुळ्ळक्काम्पिल् पाठमॆन्ना-
लॊक्क ञङ्ङळ्क्कु केळ्प्पानऱियिच्चीटणं नी । १३३
शङ्करन् नारायणनादिनायकन् परन्
शङ्करप्रियन् देवन् मंगलप्रदन् कृष्णन् १३४
पङ्कजविलोचनन् पङ्कजनाभन् हरि
पङ्कजमातिन् कुळिर्कॊङ्कयिलिळकीटुं १३५
कुङ्कुमपङ्कंतन्नालङ्कितमायिट्टति-
भंगितेटीटुं तिरुमारुळ्ळ नारायणन्
तन्कळल् वळिपोलॆ संग्रहिच्चुळ्ळल् नन्नाय् १३६
पङ्कङ्ङळॊक्क नीक्किप्पावनन्मारायवन्तु
तिङ्कळ्तन् कुलत्तिङ्कलुण्टाय भूपालन्मार् १३७
निर्म्मलन्मारायुळ्ळ पाण्डवन्मारुटॆ कथ
कल्मषमकलुवानॊक्क नी पऱयेणम् । १३८
ऎन्नतु केट्टु सूतन् मोदमोटुरचॆय्तु
नन्नल्लो पठिक्कयुं केळ्क्कयुं पुराणङ्ङ १३९
ळॆन्नतिल् विशेषिच्चुं भारतमेऱॆ नल्लू ।
निर्म्मलमितिहासं वेदसम्मितमल्लो । १४०
इत्थं पैङ्किळिमकळ्तन्नुटॆ वाक्कु केट्टु
चित्तकौतुकत्तोटे पिन्नॆयुं चोद्यं चॆय्तु । १४१
बादरायणन् चॊन्न भारतं सोपाख्यान-
मादरपूर्व्वं जनमेजयनृपनोटु १४२

---

से सब स्पष्ट सुना दिया। सूत का यह कहना सुनकर मुनि शौनक ने बड़े प्रमोद के साथ फिर याचना की। अगर वह सारी कथा तुम्हें कण्ठस्थ है तो हम लोगों को कृपया सुनाओ। १३३ शङ्कर, नारायण, आदिनायक, पर, शङ्करप्रिय, देव, मंगलप्रद, कृष्ण, पङ्कजविलोचन, पङ्कजनाथ, हरि, लक्ष्मी के शीतल स्तनों के कुङ्कुमपङ्क से अङ्कित शोभाशाली वक्षस्थलयुक्त नारायण की पद्धति को स्वीकार करके आभ्यन्तर (भीतरी) अशुद्धि दूर करके जो पवित्र हुए, उन चन्द्रवंश के भूपालों, निर्मल पाण्डवों की कथा पाप दूर करने के लिए तुम अवश्य सुनाओ। यह सुनकर सूतजी ने हर्ष से कहा। पुराणों को पढ़ना और सुनाना अच्छा है। उससे भी अच्छा है महाभारत; क्योंकि वह निर्मल इतिहास वेद के तुल्य है। १४० शुककन्या की यह बात सुनकर चित्त में बड़े कौतुक के साथ फिर याचना

वैशम्पायननरियिच्चितु सूतन्तानु-
माशपूण्टोरु शौनकादिकळ्क्करियिच्चान् । १४३
अतिनेच्चुरुक्कि नी चोल्लेणं किळिप्पेण्णे
कौतुकं पारमतिलेन्नतु केट्टनेरं १४४
मोळिमातिनेयुं व्यासनेयुं कृष्णनेयु
ताळुतु किळिमकळ् परञ्ञुतुटङ्ङिनाळ् । १४५
पलर्क्कुमितिलोरु रसमुण्टाकयिल्ल
चिलर्क्कु कुरञ्ञोरु रसमुण्टायालेतुं १४६
फलिक्कयिल्लयल्लो नन्नायिप्परकिलुं
पलर्क्कुमोरुपोले कौतुकमुण्टेङ्किले १४७
फलिप्पानेळुतावू केवलमतिन्मूलम् ।
पलर्क्कुमात्मज्ञानमिल्लायकतन्ने तानुं । १४८
ज्ञानमुण्टेन्नाकिले रमिप्पू नूनमितिल्
ज्ञानमो नूरुपेरिलोरुत्तनुण्टाकिलां १४९
एन्नालुं चुरुक्कि नी पाण्डवरुटे कथ
निन्नालाकुन्नवण्णं चोल्लेणमेन्नोटिप्पोळ् । १५०
पलर्क्कुं तेळियेणमेन्तु नी निनय्क्केण्टा
चिलर्क्कुं तेळिकिलुं मतियेन्नते वरू । १५१

---

की। जो बादरायण की कही भारतकथा वैशम्पायन ने उपाख्यानसहित जनमेजय को सादर सुनायी थी, उसी को सूतजी ने प्रबल इच्छावाले शौनक आदियों को सुनाया। हे शुककन्ये उसी को संक्षेप में सुनाओ, उसके सुनने के लिए हमें बड़ा कुतूहल है। यह सुनकर, व्यास और कृष्ण को हाथ जोड़कर वाग्देवी शुककन्या ने कहना प्रारम्भ किया। बहुतों को तो इसमें कोई रस ही नहीं प्रतीत होगा। कुछ लोग शायद इसमें थोड़ा-सा रस लें, परन्तु अच्छी तरह से कहे जाने पर भी इसका फल न होगा। जब बहुत लोग समान रूप से आस्वादन करेंगे, तभी तो उसकी सफलता होगी। १४७ बहुत लोगों को तो आत्मज्ञान है ही नहीं। जब ज्ञान है, तभी तो उसमें मन लगता है, और ज्ञान तो सौ में एक ही को होता है; फिर भी तुम पाण्डवों की कथा, संक्षेप में, जितना अच्छा तुमसे हो सकता है उतना अच्छा सुनाओ। यह शर्त न लगाओ कि बहुत लोग समझें। यह पर्याप्त है कि कुछ लोग समझें। अगर कोई भी न समझे, तब भी मुझे यह सुनने की बड़ी इच्छा है। अब विलम्ब न करो।

आक्कुंमे तॆळिकयिल्लॆङ्किलुमिनिक्कितु
केळ्क्केणं पॆरिकॆयुण्टाग्रहं मनक्काम्पिल् । १५२
वैकरुतिनिक्कालं पळुते कळयातॆ
पैकळञ्ञुरचॆय्क भारतकथयॆल्लाम् । १५३
भारतं चमच्चोरु कृष्णद्वैपायननां
पाराशर्यन्टॆ जन्मं चॊल्लेणमल्लो मुन्पिल् । १५४

## वेदव्यासोल्पत्ति

ऒन्ङ्किलो मुन्नं चेदिराज्यत्तिलॊरु नृपन्
मंगलनाय वसुवुण्टायानवन् नन्नाय् १
इन्द्रनॆस्सेविक्कयाल् कॊटुत्तु वरङ्ङ्ळु-
मिन्द्रन् मालयुमॊरु वैष्णवमाय दण्डुं २
आकाशे नटप्पतिनायॊरु विमानवुं
लोकवृत्तान्त मॆल्लामऱिवान् विज्ञानवुं ३
ऒक्कवे कॊटुक्कयालॆन्नयुं प्रसिद्धनाय्
विख्यातकीर्त्तियोटुं रक्षिक्कुं कालत्तिङ्कल् ४
उपरिचरनॆन्न नामवुमुण्टाय्वन्नि-
तुपरिभागत्तिङ्कल् चरिक्काय्वन्नमूलम् । ५
वासवभक्तनायोरुपरिचरन् वसु
वासवसमाननाय् वाळुन्नकालत्तिङ्कल् ६

---

व्यर्थ समय न खोकर भूख शान्त करके [तृप्त होकर] सारी भारतकथा सुनाओ। महाभारत के रचयिता पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन का जन्म पहले सुनाना चाहिए। १४५

## वेदव्यास की उत्पत्ति

अतीत (भूतकाल) में चेदि राज्य में वसु नामक एक मंगलमय राजा था। उसने इन्द्र की सेवा की। इन्द्र ने उसको वर दिया और वर के अतिरिक्त एक माला, एक वैष्णव दण्ड, आकाश में संचार करने के लिए एक विमान और लोक-वृत्तान्त जानने के लिए विज्ञान भी दिया। इन्द्र के यह सब प्रदान करने के कारण वह राजा प्रसिद्ध और विख्यात-कीर्ति हुआ। राज करते समय उसका नाम उपरिचर हुआ, क्योंकि वह ऊपर संचार करता था। वासव (इन्द्र)-भक्त उपरिचर वसु वासव-

उण्टायि बृहद्रथन् प्रत्यग्रन् कुशांबनुं
विण्टलर् कालनाय मच्चिलन् यदुतानुं ७
तनयन्मारायञ्चु बालन्मारुण्टायतिल्
मणिवाहननॆन्नुं चॊल्लुवोर् कुशांबनॆ । ८
अवरॆयोरो नाट्टिल् वाऴिच्चानैवरॆयु-
मविटॆ बृहद्रथन् मागधराजावायान् । ९
अक्कालं चेदिराज्यंतन्नुटॆयरिकत्तु
चॊल्कॊण्ट शुक्तिमतियाकिय नदितन्नॆ १०
कामिच्चु कोलाहलनाकिय गिरिवरन्
प्रेमत्तोटवळॆच्चॆन्नाश्लेषं चॆय्तानवन् ११
वेगत्तिलॊऴुकुन्न वाहिनिक्कतुनेरं
पोकरुतातॆ वन्नु पर्व्वतं तटुक्कयाल् । १२
वॆळ्ळवुं मेल्पोट्टुय्क्कु पॊङ्ङियन्नाट्टिलॆल्ला-
मुळ्ळवरल्लल् कैक्कॊण्टन्यायं चॊल्कयाले । १३
मन्नवन् वसुतानुमत्तोरमतु कण्टु
चॆन्नॊन्नु चवुट्टिनान् पर्व्वतवरन्तन्नॆ । १४
पॊटिञ्ञु गिरिवरन् नटन्नु नदितानु-
मटङ्ङि तन्निलाशु तॊऴिञ्ञु जनङ्ङळुम् । १५
पृथिवीधरन् नदितन्निलन्नुल्पादिच्चि-
ट्टधिकगुणत्तोटु रण्टु पैतङ्ङळुण्टाय् । १६

समान हुआ। राज करते समय उनके बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशांब, मच्चिल्ल और शत्रुओं का नाशक यदु, इस प्रकार पाँच पुत्र हुए। उनमें कुशांब को मणिवाहन भी कहते हैं। वसु ने पाँचो को भिन्न-भिन्न देशों का राजा बनाया। बृहद्रथ मगध का राजा हुआ। ९ उन दिनों चेदिराज्य के समीप जो विख्यात नदी शुक्तिमती थी, उससे गिरि कोलाहल का प्रेम हुआ। उसने जाकर नदी का आश्लेष किया। पर्वत के रोकने से वेग से बहती हुई नदी आगे नहीं जा सकी। बाढ़ का जल बहुत ऊपर उठ आया, तब उस देश के निवासी दुःखित होकर इसे अन्याय कहने लगे। राजा वसु ने यह स्थिति देखकर पर्वत को एक लात मारी, जिससे पर्वत चूर-चूर हो गया और नदी फिर बहने लगी और बाढ़ भी समाप्त हुई। जनता भी प्रसन्न हुई। पर्वत ने उस अवसर पर नदी में दो गुणवान् बच्चे पैदा किये। १६ उनमें एक लड़का था और एक लड़की। नदी

ऒन्नॊरु पुमानतिल् मट्टॆतु कन्यकयुं
मन्नवन् तनिक्कु नल्कीटिनाळ् नदितानुं । १७
पुरुषन्तन्नॆस्सेनापतियाय् वच्चानवन्
तरुणीमणितन्नॆप्पत्नियुमाक्किवच्चान् । १८
गिरिकयॆन्नुतन्नॆ पेरवळ्क्काकुन्नतुं
पॆरिकॆ मनोहरियॆन्नते पऱयावू । १९
अवळुमॊरुदिनमृतुधर्म्मत्तॆ प्रापि-
च्चधिकशुद्धयायिच्चतुर्त्थस्नानं चॆय्ताळ् । २०
अन्नल्लो मृगङ्ङळॆक्कॊन्नु कॊण्टरिकॆन्नु
मन्नवन्तन्नोटपेक्षिच्चितु पितृक्कळुम् । २१
पोयितु नायाट्टिन्नु भूपतियतुनेरं
पोयील मनस्सवळ्तन्नोटु पिरिञ्ञेतुम् । २२
सुन्दरांगियॆत्तन्नॆ चिन्तिच्चु नृपवरन्
मन्दमन्दं पोयॊरु काननं पुक्कनेरं २३
मन्दार कुन्दमाकन्दासनसून मक-
रन्दसंयुक्तमन्दगन्धवाहादिकळुं २४
कोकिलशुकक्रौंच सारसचक्रवाक,
केकिषळ्प्पदमुख्य पक्षिकळ्नादङ्ङळुं २५
सूकरकरिहरि हरिणमहिषादि
भोगलीलादिकळुं कण्टु मानसमळि- २६

ने दोनों बच्चे राजा को दे दिये । राजा ने लड़के को अपना सेनापति बनाया और लड़की को अपनी पत्नी बनाया । उस लड़की का नाम था गिरिका, वह बहुत ही सुन्दरी थी । एक बार वह अपने मासिक ऋतु धर्म के हो जाने के बाद चौथे दिन शुद्ध हुई और स्नान किया । उन दिनों पितृलोगों ने राजा से शिकार खेलकर मृगों को मार लाने के लिए याचना की । राजा शिकार खेलने तो चले गये, पर अपनी पत्नी से मन नहीं हटा सके । उसी का ध्यान करते हुए नृपवर ने धीरे-धीरे वन में प्रवेश किया । २३ उस समय वहाँ मन्दार, कुन्द, माकन्द, असन आदि पुष्पों के मकरन्द (रस) से मिला हुआ मन्दवायु का, कोकिल, शुक, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, केकि आदि पक्षियों के निनाद का और सूकर, हाथी, सिंह, हरिन, महिष आदि की भोगलीलाओं का अनुभव कर राजा का मन शिथिल हुआ और बलात् उनका इन्द्रिय (वीर्य) स्खलन हुआ ।

नीलवीर बले, ओरे बेटा मेघनाद * जीयन्ते फिरिया जाबे, ना करह साध
सुग्रीव पाइल राज्य श्रीरामेर गुणे * रावणे वधिया राज्य दिब विभीषणे
अजेय सुग्रीव-राजा अतुलन-बल * गाछ-पाथरेते बान्धे सागरेर जल
दुकूल समुद्र बाँधि कैल एक कूल * राक्षस-कटक मारि करिल निर्म्मूल
जीवनेर बांछा यदि करिस् इन्द्रजित् * सबान्धवे लंका छाड़ि पला रे त्वरित
ये बेटा थाकिबे एइ लंकार भितर * पाठाइबे यमालये सुग्रीव-वानर२०७
इन्द्रजित् बले, बेटा, भ्रमितिस् वने * केन प्राण दिते एलि राक्षसेर बाणे
ना जान धरिते अस्त्र, कथार आँटुनि * एकबाणे यमालये पाठाब एखनि
सुग्रीव वानरा, तार किसेर बाखान * मानुष लक्ष्मण बेटा, जाने कत बाण
गोटा-कत राक्षस मारिया तोर राम * मनेते क'रेछे बुझि, जिनेछि संग्राम
सेइ दिन म'रे बेटा जेतो नागपाशे * भाग्यबले बेचे गेल गरुड़-निःश्वासे
पक्षी बेटा आसिया दिलेक प्राणदान * धिक् रे वानरा, तार करिस् बाखान२०८
एत यदि कहिलेक रावणेर बेटा * नील-वानरेर बुके लागे येन जाठा
कहितेछे नीलवीर कोपेते विवर्ण * तुइ ना म'रे मरे तोर खुड़ा कुम्भकर्ण

---

श्रीराम के गुणों के कारण सुग्रीव को राज्य मिला। रावण का वध कर अब विभीषण को राज्य दूँगा। सुग्रीव राजा अजेय और अतुल बलशाली है, उसने वृक्ष और पत्थरों से समुद्र के दोनों तटों को बाँधकर एक कर दिया है—राक्षस-कटक का संहार कर उसको समूल समाप्त कर दिया है। अरे इन्द्रजीत, यदि तुझे जीवन की अभिलाषा है तो तू अपने इष्ट-मित्रों सहित झटपट लंका छोड़ कर भाग जा। इस लंका में जो कोई भी रह जायगा उसको वानर-राज सुग्रीव यमालय भिजवा देगा ॥ २०७ ॥

इन्द्रजीत ने कहा, अरे अभागे, तू वन-वन में विचरा करता था, नाहक राक्षस के बाण से प्राण देने क्यों चला आया। हथियार पकड़ना तो आता नहीं बस बड़े बोल में कुशल है, मैं एक ही बाण से अभी तुझे यमालय भिजवा दूँगा। वानर सुग्रीव के गुणों को तू क्या बखान कर रहा है। भला उस मानव लक्ष्मण को भी कितने बाणों का पता है। चन्द राक्षसों को मार कर तेरे राम ने क्या समझ लिया है कि वह युद्ध जीत गया है। उस दिन वह तुच्छ राम नाग-पाश से अवश्य मर गया होता—भाग्य से गरुड के निश्वास के कारण जी गया। पक्षी ने आकर उसे प्राणदान दिया। अरे वानरा, तुझे धिक्कार है जो तू उसकी प्रशंसा कर रहा है ॥ २०८ ॥

जब रावण के बेटे ने यह कहा तो नील-वानर के हृदय पर मानों शेल का आघात पहुँचा। क्रोध से विवर्ण होकर नीलवीर ने कहा, तू तो नहीं मरा लेकिन तेरा चाचा कुम्भकर्ण मर गया। जाति से तू निशाचर है अत: आगा-पीछा का तुझे कोई ज्ञान नहीं, तेरे रहते हुए तेरे सहोदर क्यों मर गये। जितने

आगु-पाछु ना जानिस, जाति निशाचर ❋ तुइ थाकिते मरे केन तोर सहोदर
यतेक राक्षसगण आइल निकटे ❋ ना जानि धरिते अस्त्र, हाते नाहि आँटे
नाहिक आहार-निद्रा, जागि साराराति ❋ यावत् ना मारिब लंकार अधिपति
आजि तोरे मारिया मारिब तोर पिता ❋ विभीषण-उपरे धराब दण्ड-छाता २०९

इन्द्रजितेरे युद्धे विभीषण ओ हनुमान व्यतीत सैन्यसह श्रीराम ओ लक्ष्मणेर मूर्च्छा

कुपिल से इन्द्रजित् नीलेर वचने ❋ कोपे गालि पाड़े वीर, यत आसे मने
आजि यदि रहे बेटा, तोमार जीवन ❋ तबे राजा करिस् राक्षस विभीषण
एत बलि मेघनाद मेघे हय लुकि ❋ मेघ-आड़े थाकि युद्धे रावणि धानुकी
आकाशे थाकिया करे बाण-वरिषण ❋ जर्ज्जर करिया बिन्धे यत कपिगण
खाण्डा ओ डांगस टाँगी छुरी एकधारा ❋ चारिभिते पड़े, येन आकाशेर तारा
नाना-अस्त्र कपिगणे करये प्रहार ❋ सर्व्वांग बहिया पड़े रुधिरेर धार
हस्त-पद काटे, कपि पड़े कोटि-कोटि ❋ गड़ागड़ि जाय भूमे कामड़ाय माटि
पलाइया जाय केह मने भावि अन्त ❋ छुता करि पड़े केह सिट किया दन्त
केह पड़े सेतुबन्धे गाये माखि बालि ❋ दूरे गिया केह वा राजारे पाड़े गालि
भाल छिल बालिराज गुणेर सागर ❋ आपनार पुत्र-सम पालिल वानर

राक्षस निकट आए, अस्त्र न पकड़ते हुए भी हाथों से उनका विनाश किया। जब तक हमलोग लंका के अधिपति को मार नहीं गिरायेंगे तब तक के लिए हमलोगों ने आहार निद्रा छोड़ रखा है। आज तुझको मार कर फिर तेरे पिता को मारूँगा और विभीषण पर राजछत्र सुशोभित करूँगा ॥ २०६ ॥

इन्द्रजीत के युद्ध में विभीषण और हनुमान के सिवा सारी सेना-
सहित श्रीराम और लक्ष्मण की मूर्च्छा

नील के वचन से इन्द्रजीत क्रुद्ध हुआ और उसके मन में जो अपशब्द आये सुनाने लगा। आज अगर तेरी जान बच जाये तो राक्षस विभीषण को राजा बनाना। इतना कहकर मेघनाद मेघ में छिप गया और बादलों की आड़ में रहकर रावण-पुत्र धनुर्धारी-युद्ध करने लगा। आकाश में रहकर वह बाण बरसाने लगा और सारे कपियों के शरीर को छलनी बनाने लगा। चारों ओर खाँड़ा, फरसा, छुरा यों गिरने लगे मानों आकाश से तारे टूट रहे हों। विभिन्न अस्त्रों से कपि आहत होने लगे और उनके सारे अंगों से रक्त की धारा बहने लगी। हाथ-पैर कट कर कोटि-कोटि कपि गिरे और भूमि पर लुढ़क कर वे धरती चूमने लगे। कोई तो अन्त समय आया समझकर भाग खड़ा हुआ तो कोई आ कर दाँत निपोर कर भूमि पर पड़ गया। कोई सेतुबन्ध पर जाकर बदन पर बालू मलने लगा तो कोई राजा (सुग्रीव) को गाली देने लगा। (वे कहने लगे—) बाली राजा बहुत नेक थे; वे अपने पुत्र के समान

बालि-राजेर खाइया परिया गेल काल ❋ एतदिन नाहि छिल एमन जञ्जाल
आड़ाइ दिनेर मध्ये पेये छत्र-दण्ड ❋ लङ्काते वानर आनि कैल लण्ड-भण्ड
राम-सुग्रीवेर आर केन उपरोध ❋ इन्द्रजित्-संगे नाहि करिब विरोध
कपिर क्रन्दन शुनि इन्द्रजित् हासे ❋ प्रहारे असंख्य वाण थाकिया आकाशे
वरिषे असंख्य वाण आगुनेर कणा ❋ पड़िल ये नीलवीर सह-निज सेना
रक्ते नदी बहिछे, देखिते भय करे ❋ वानर सहस्र-कोटि पड़े पूर्व्वद्वारे १०
पूर्व्वद्वार जिनिया कुमार मेघनाद ❋ दक्षिण-द्वारेते गिया करे सिंहनाद
दक्षिण-दुयारे कोन कपि-वीर जागे ❋ परिचय दाओ, युद्ध देह मोर आगे
महेन्द्र देवेन्द्र जागे अंगद प्रभृति ❋ मरिते आइलि बेटा निशाभाग-राति
नाहिक आहार-निद्रा, नाहि सुख-आश ❋ यावत् रावण-वंश ना हय विनाश
आजि तोरे मारिया मारिब तोर पिता ❋ विभीषण-उपरे धराब दण्ड-छाता
छारखार करिब लुठिया लङ्कपुरी ❋ विभीषण-कोले दिब राणी मन्दोदरी ११
कोपे इन्द्रजित् शरभेर वाक्य शुने ❋ गालि पाड़े मेघनाद, यत आसे मने
आजिकार युद्धे यदि रहे त जीवन ❋ तबे राजा करिस् राक्षस विभीषण

वानरों का पालन करते थे। बाली राजा का खा-पीकर इतने दिन बीत गये—कभी ऐसा बवाल नहीं आ पड़ा। ढाई दिन में राजदंड और छत्र पाकर सारे बानरों को लंका में लाकर ऐसी धमाचौकड़ी मचा दी। अब राम-सुग्रीव का कहना क्यों मानें—इन्द्रजीत के साथ अब कोई विरोध नहीं करेंगे। कपियों का क्रन्दन सुनकर इन्द्रजीत हँसने लगा और आकाश में रहकर ही असंख्य वाणों से प्रहार करने लगा। जब आग के समान असंख्य वाण बरसने लगे तो नीलवीर अपनी सेना सहित गिर पड़ा। खून की नदी बहने लगी जिसे देखते हुए भी डर लगता था। पूर्वीद्वार पर सहस्र-कोटि वानर धराशायी हुए॥ १०॥

पूर्वीद्वार पर विजय पाकर कुमार मेघनाद दक्षिणद्वार पर जाकर सिंहनाद करने लगा। (मेघनाद बोला—) दक्षिण-द्वार पर कौन सा कपि-वीर जागता है—अपने-अपने परिचय दो और मेरे साथ युद्ध करो। महेन्द्र, देवेन्द्र, अंगद आदि जाग रहे थे। (वे कहने लगे—) रात को विचरने वाले अभागे तू यहाँ मरने आ गया! न भोजन है और न निद्रा और न सुख की आशा है, जब तक कि रावण के वंश का विनाश नहीं होता। आज तुझको मारकर तेरे पिता को मारूँगा और विभीषण के सर पर छत्र धराऊँगा। सारी लंकापुरी को लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा और विभीषण की गोद में रानी मन्दोदरी को ला बिठाऊँगा॥ ११॥

शरभ के ये वाक्य सुनकर इन्द्रजीत कुपित हुआ और मन में जो बुरा-भला आया वही बकने लगा। आज के युद्ध में यदि तुम लोगों के प्राण बच गये

एत बलि मेघनाद मेघेते लुकाये ❋ वरिषे असंख्य वाण विक्रम करिये
आकाशे थाकिया करे वाण-वरिषण ❋ जर्ज्जर करिया बिन्धे यत कपिगण
ब्रह्म-अस्त्र प्रहारे ब्रह्मार पेये वर ❋ वाण फुटि मूर्च्छागत असंख्य वानर
बड़-बड़ वानर हइल अचेतन ❋ महेन्द्र देवेन्द्र पड़े बालिर नन्दन
आशीकोटि कपि पड़े दक्षिण-द्वारेते ❋ वानरेर रक्ते नदी बहे खरस्रोते १२
जिनिया दक्षिण द्वार चले मेघनाद ❋ उत्तर-द्वारेते गिया करे सिंहनाद
उत्तर-द्वारेते कोन कोन बेटा जागे ❋ परिचय देह त दारुण निशाभागे
धूम्राक्ष वानर छिल रात्रि-जागरणे ❋ डाकिया उत्तर करे मेघनाद-सने
असंख्य वानर आछे तोर पथ चेये ❋ आपनि सुग्रीव-राजा र'येछे जागिये
अन्नजल नाखाइ, नाजाइ निद्रा रेते ❋ यावत् राक्षस-वंश ना पारि मारिते
आजि तोरे मारिया मारिब तोर पिता ❋ विभीषण-उपरे धराब दण्ड-छाता
कोपे ज्वले इन्द्रजित् वानर-वचने ❋ गालि पाड़े मेघनाद, यत आसे मने
आजिकार युद्धे आगे बाँचुक् जीवन ❋ तबे राजा करिस् राक्षस विभीषण
एत बलि मेघनाद मेघेते लुकाये ❋ वानर-कटक बिन्धे सन्धान पूरिये
आकाशे थाकिया करे वाण-वरिषण ❋ जर्ज्जर करिया विन्धे यत कपिगण

---

तो विभीषण को राजा बनाना। इतना कहकर मेघनाद मेघ में छिप गया और असंख्य वाण बरसाने लगा। आकाश में रहकर वह बाण बरसाने लगा और कपियों को जर्जरित करने लगा। ब्रह्मा का वर मिलने के कारण वह ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने लगा। उसके वाणों से बिंध कर असंख्य वानर मूर्च्छित हो गये। बड़े-बड़े वानर अचेतन हो गये। बाली-नन्दन अंगद, महेन्द्र और देवेन्द्र वानर भी गिरे। दक्षिण-द्वार पर अस्सी करोड़ कपि गिरे। वानरों के रक्त से तेज बहाव वाली नदी बहने लगी ॥ १२ ॥

दक्षिणद्वार पर विजय प्राप्त कर मेघनाद उत्तरद्वार पर गया और वहाँ सिंहनाद करने लगा। (वह बोला—) उत्तरद्वार पर कौन जाग रहा है। इस रात्रि के समय अपना परिचय दो। रात्रि-जागरण पर धूम्राक्ष वानर नियुक्त था; उसने मेघनाद को ललकार कर जवाब दिया। तेरा पथ जोहते हुए असंख्य वानर जाग रहे हैं—स्वयं राजा सुग्रीव भी जाग रहे हैं। हम न अन्नजल ग्रहण करते हैं और न रात को सोते हैं जब तक राक्षस-वंश सम्पूर्ण रूप से मर न जाय। आज तुझको मार कर फिर तेरे बाप को मारूँगा और विभीषण के सर पर राजछत्र धराऊँगा। वानर के इन वाक्यों से मेघनाद क्रोधित हुआ और उसके मन में जो कुवाक्य आये वह बकने लगा। वह बोला आज के युद्ध में अपने प्राण बचा ले, फिर राक्षस विभीषण को राजा बनाना। इतना कहकर मेघनाद मेघ में छिप गया और निशाना साध-साध कर वानर-कटक पर बाण चलाने लगा। आकाश से रह-रहकर वाण बरसाने लगा

मारे काटे इन्द्रजित् केह नाहि देखे ❋ उत्तर-द्वारेते कपि पड़े लाखे-लाखे
वानर-कटक पड़े, वीर-चूड़ामणि ❋ आछुक अन्येर काज सुग्रीव आपनि
रक्ते नदी बहे, ठाट पड़िल विस्तर ❋ असंख्य-वानरे पड़े सुग्रीव-वानर १३
मेघेर आड़ेते चले वीर मेघनाद ❋ पश्चिम-दुयारे गिया करे सिंहनाद
पश्चिम-दूयारे कोन-कोन वीर जागे ❋ त्वरिते आसिया युद्ध देह निशाभागे
हनुमान वीर छिल रात्रि-जागरणे ❋ डाकिया उत्तर करे मेघनाद-सने
सेनापतिगण जागे, नाहि परिमाण ❋ बड़-बड़ वीर जागे पर्व्वत-प्रमाण
जागिछे सुषेण-वेज राजार श्वशुर ❋ जागितेछे कोटि-कोटि वानर प्रचुर
श्रीराम-लक्ष्मण जागे संसार-पूजित् ❋ आमि हनुमान जागि, शुन इन्द्रजित्
नाहिक आहार-निद्रा, जागि दिवानिसि❋यावत् ना मारिब लंकार अधीस
तोरे बध करिया बधिब तोर पिता ❋ विभीषण-उपरे धराब दण्ड-छाता
विभीषणे समर्पित स्वर्ण-लंकपुरी ❋ केलि करिवारे दिब राणी मन्दोदरी १४
एत शुनि मेघनाद महाकोप मने ❋ हनूमाने गालि पाड़े, यत आसे मने
श्रीरामेरे डाक दिया, बले मेघनाद ❋ देशेते जीयन्ते जाबे, ना करिह साध

और कपियों को बाँधता रहा। इन्द्रजीत मारकाट मचाये हुए है लेकिन कोई भी उसको आँखों से नहीं देख पा रहा है और उत्तरद्वार पर लाख-लाख कपि गिर रहे हैं। वानर कटक नष्ट-भ्रष्ट हो गया; दूसरों की क्या कहें, स्वयं वीर-चूड़ामणि सुग्रीव भी गिरे। खून की नदियाँ बह निकलीं और बहुत सारी सेना भी सुग्रीव के साथ घायल हो भूमि पर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

बादलों की आड़ में रहकर मेघनाद चला और पश्चिमद्वार पर आकर उसने सिंहनाद किया। (वह बोला,) पश्चिमद्वार पर कौन-कौन वीर जाग रहा है—रात्रि के समय आकर तुरन्त मेरे साथ युद्ध करो। उस समय रात्रि-जागरण पर वीर हनुमान था। उसने डपट कर मेघनाद को जवाब दिया। सारे सेनापति जाग रहे हैं जो संख्या में अगणित हैं। पर्वत-प्रमाण बड़े-बड़े वीर जाग रहे हैं। राजा के श्वसुर सुषेण वैद्य जाग रहे हैं—और कोटि-कोटि वानर भी जाग रहे हैं। संसार के पूज्य श्रीराम और लक्ष्मण भी जाग रहे हैं। सुनो इन्द्रजीत, मैं हनुमान जाग रहा हूँ। जब तक लंका के अधिपति की मृत्यु नहीं होती तब तक खाना-पीना-सोना वर्जित है—मैं रातोंदिन जागता रहता हूँ। तेरा वध करूँगा और विभीषण के हाथों में राजदंड देकर उसके ऊपर राजछत्र को सुशोभित करूँगा। स्वर्णमयी लंकापुरी बिभीषण को सौंप दूँगा और केलि करने के निमित्त रानी मन्दोदरी को अर्पित कर दूँगा ॥ १४ ॥

इतना सुनकर मेघनाद महा क्रोधित हुआ। उसके मन में जो अपशब्द आये, वह हनुमान को कहने लगा। मेघनाद ने श्रीराम को पुकार कर कहा,

इन्द्रजित् नाम मोर त्रिभुवन जाने ❊ कोन बेटा निस्तार पाइबे मोर वाणे
एत बलि लुकाइल मेघेर आड़ाले ❊ आकाशे थाकिया वाण झाँके झाँके फेले
आकाशे थाकिया करे वाण-वरिषण ❊ जर्ज्जर करिया विन्धे श्रीराम-लक्ष्मण
शेल शूल मुषल मुद्गर एकधारा ❊ चारिदिके पड़े, येन आकाशेर तारा
जाठा जाठि झकड़ा कर्णिक एकधार ❊ वरिषण करे, आर बले मार-मार
श्रीरामे यतेक विन्धे, ताहा नाहि माने ❊ सह सह बलि तबे डाकये लक्ष्मणे
वज्रेर समान वाण असंख्य वरिषे ❊ पड़िल लक्ष्मण-वीर श्रीरामेर पाशे
क्षुरपार्श्वं अर्द्धचन्द्र दु' वाणेर नाम ❊ सेइ दुइ बाण फुटि पड़िल श्रीराम १५
चारिद्वारे पड़े ठाट लक्ष्मण-श्रीराम ❊ राजार प्रसाद लैते चले पितृ स्थान
आगुवाड़ि पथे पड़े चन्दनेर छड़ा ❊ ताहार उपरे पाते नेतेर पाछड़ा
हस्तेक प्रमाण पाड़े पुष्प-पारिजात ❊ आज्ञा पेये पवन सुगन्ध बहे वात
दाण्डाय बापेर आगे वीर-अवतार ❊ बापेर चरणेमाथा नोङाय तिनबार
कहिल सकल, यत करिल संग्राम ❊ पड़िल सकल-सैन्य-सहित श्रीराम
पड़िल लक्ष्मण आर वीर हनूमान ❊ वानर-कटक पड़े, नाहि परिमाण

देश को जीवित लौट सकोगे ऐसी साध मन में मत रखो। मेरा नाम इन्द्रजीत है, मुझको सारा संसार जानता है, मेरे बाणों से किसको निस्तार मिल सकता है। इतना कहकर वह बादलों की ओट में छिप गया। आकाश में रहकर वह अनगिनत बाण बरसाने लगा। आकाश में रहकर वाण बरसाते हुए वह श्रीराम-लक्ष्मण को बींधने लगा। चारों ओर धारा-प्रवाह शेल, शूल, मूसल और मुद्गर इस प्रकार गिरने लगे मानों आकाश से तारे गिर रहे हों। विभिन्न शस्त्र बरसाते हुए वह मार-मार शब्द करने लगा। श्रीराम को जितने अस्त्र वह मारता उनकी गणना न कर वह लक्ष्मण को सम्बोधित करता, जरा झेल कर तो देखो। जब वज्र के समान असंख्य बाण बरसने लगे तो वीर लक्ष्मण रामचन्द्र के बगल में ही गिर पड़े। क्षुरपार्श्व और अर्धचन्द्र नामक दो बाणों से आहत हो श्रीराम भी गिर गये ॥ १५ ॥

चारों द्वारों पर श्रीराम-लक्ष्मण सहित जब सारा वानर-कटक गिरा तो राजा का प्रसाद प्राप्त करने के लिए ( इन्द्रजीत ) पिता के निकट चल पड़ा। उसके चलने के पथ पर चन्दन का छिड़काव हुआ, फिर मूल्यवान वस्त्र बिछाया गया। हाथ-भर ऊँचा पारिजात-पुष्प उस पर बिछ गया। आज्ञा पाकर पवन सुगन्ध का संचार करने लग गया। वीरता का अवतार इन्द्रजीत जाकर पिता के सम्मुख खड़ा हो गया और पिता के चरणों में तीन बार नमन किया। उसने युद्ध के सम्बन्ध में सभी कुछ बताया कि

सुग्रीव अंगद पड़े, नील सेनापति ❋ पड़िल से जाम्बवान भल्लूक प्रभृति
शरभ सुषेण गन्धमादनादि वीर ❋ समुद्रेर कूले सब लोटाय शरीर
चारिद्वारे पड़ियाछे वानरेर थाना ❋ आजि रणे जीयन्त नाहिक एकजना
सुग्रीव-वानरे आर नाहि तव डर ❋ घरपोड़ा वानर गियाछे यमघर १६
हरिषे युद्धेर कथा कहे मेघनाद ❋ चुम्ब दिया रावण करिल आशीर्व्वाद
राजप्रसाद मेघनाद पाइल विस्तर ❋ विचित्र निर्म्माण दिल रत्नेर टोपर
वलय कंकण दिल, माणिक रतन ❋ पञ्चशब्दे वाद्य बाजे, ना जाय गणन
नाना-रत्न-धन दिल, मस्तकेर मणि ❋ इन्द्र-विद्याधरी दिल सहस्र कामिनी
राज प्रसाद दिल राज्य क' रे लण्ड-भण्ड ❋ सबेमात्र नाहि दिल नव-छत्र-दण्ड
राज प्रसाद पाइया प्रवेशे अन्तःपुरी ❋ नारिभाग ल'ये गृहे खेले पाशासारि १७

ससैन्य श्रीराम-लक्ष्मणेर उज्जीवनार्थ विभीषण, हनूमान, ओ जाम्बवानेर मन्त्रणा

चारि-द्वारे पड़े सैन्य श्रीराम-लक्ष्मण ❋ रक्षा पाय विभीषण पवन-नन्दन
दुइजने अमर ब्रह्मार पेये वर ❋ ना मरिल दुइजन वानर-भितर

श्रीराम सहित सारी सेना पराजित हुई है। लक्ष्मण और वीर हनुमान भी गिरे हैं। असंख्य वानरी-सेना विनष्ट हो गई है जिसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। सुग्रीव, अंगद और नील सेनापति भी गिरे हैं। जाम्बवान अपने भालुओं के साथ गिरा है। शरभ, सुषेण, गन्धमादन आदि वीरों के शरीर समुद्र-तट पर पड़े हैं। चारों द्वारों पर वानरी-सेना गिरी है। आज के युद्ध में एक भी जीवित नहीं रहा। अब तुमको सुग्रीव-वानर से कोई डर नहीं। घर जलाने वाला वानर भी यमालय चला गया है॥ १६॥

मेघनाद ने हर्ष से युद्ध की बातें सुनाईं। रावण ने उसका चुम्बन कर आशीर्वाद किया। मेघनाद को पर्याप्त राजप्रसाद प्राप्त हुआ, विचित्र रूप से निर्मित रत्नमुकुट मिला, वलय कंगन माणिक्य और रत्न मिले। पंचशब्द से असंख्य वाद्य बजने लगे। अपने मस्तक से मणि उतार कर तरह-तरह का धन-रत्न दिया। सहस्रों इन्द्र-विद्याधरी कामिनियाँ भी मिलीं। राज्य को खाली कर राजप्रसाद दिया गया—केवल नया छत्र और दंड ही नहीं मिला। राजप्रसाद प्राप्त करने के बाद उसने अन्तःपुर में प्रवेश किया और नारीमंडली लेकर पाँसा खेलने बैठ गया॥ १७॥

सारी सेना-सहित श्रीराम-लक्ष्मण को उज्जीवित करने के निमित्त विभीषण, हनुमान और जाम्बवान की मंत्रणा

चारों द्वारों पर श्रीराम-लक्ष्मण सहित सारी सेना गिरी। केवल विभीषण और पवननन्दन बचे रहे। ब्रह्मा का वरदान पाकर दोनों अमर हैं। वानरों में

चिन्तिया गणिया दोंहे युक्ति कैल सार ❋ राम-लक्ष्मण जीयाइते कैल प्रतिकार
हाते करि देउटि फिरिछे दुइ वीर ❋ वानर देखिया बेड़ाय, गति अति धीर
प'ड़ेछे सुग्रीव-राजा ल'ये राज्यखंड ❋ छत्रिश-कोटि सेनापतिर लोटाइछे मुण्ड
पूर्व्वद्वारे शतकोटि वानर-संहति ❋ हाते गाछ पड़ियाछे नील सेनापति
प'ड़ेछे अंगद वीर दक्षिण-दूयारे ❋ वाणेते अवश अंग, मूर्च्छित शरीरे
पड़िया पश्चिम-द्वारे श्रीराम-लक्ष्मण ❋ देखिया माथाय हात कान्दे दुइजन
शब्द नाहि, स्तब्ध अंग, दु'जने मूर्च्छित ❋ नाड़िया चाड़िया देखे, नाहिक संवित्
बाण फुटि पड़ियाछे मन्त्री जाम्बवान ❋ ना पारे मेलिते चक्षु, बुके पड़े टान
विभीषण बले, तुमि बले महाबली ❋ उठिया मन्त्रणा कर, आर कारे बलि
जाम्बवान बले, मम अंगे लक्षबाण ❋ ना पारि मेलिते चक्षु, बुके पड़े टान
अनुमाने जानिलाम कथार आभासे ❋ विभीषण आसियाछ आमार सम्भाषे
जाम्बवान बले तुमि धार्मिक सुजन ❋ तत्त्व करि देख, कोथा पवन-नन्दन
दु'जने मन्त्रणा करि भावह उपाय ❋ इन्द्रजित-बाणे सबे रक्षा किसे पाय
विभीषण बले, तुमि बुद्धे बृहस्पति ❋ इन्द्रजित-बाणे तव छिन्न हैल मति
श्रीराम-लक्ष्मण पड़े जगत्-पूजित ❋ ए-समये केन नाहि चिन्ता करहित

केवल यही दोनों नहीं मरे। दोनों ने चिन्तन-मनन कर यह निश्चय किया कि श्रीराम लक्ष्मण को जिलाने के लिए प्रबन्ध करना है। हाथ में दीवट लेकर दोनों वीर मंथर-गति से वानरों को देखने फिरने लगे। अपना सारा कटक लेकर राजा सुग्रीव गिरे हैं। छत्तीस करोड़ सेनापतियों के मुंड लुढ़क रहे हैं। पूर्वीद्वार पर सौ करोड़ वानरों की सेना गिरी है। नील सेनापति हाथ में वृक्ष लेकर गिरा है। दक्षिण द्वार पर अंगद वीर गिरा है। उसका शरीर बाणों से निश्चेष्ट पड़ गया है और वह मूर्छित पड़ा है। पश्चिमद्वार पर श्रीराम और लक्ष्मण गिरे हैं। उनको देखकर सिर पर हाथ रख दोनों रोने लगे। दोनों ने हिलाडुला कर देखा कि दोनों मूर्छित पड़े हैं, कोई आहट नहीं और सारा शरीर भी निश्चल है। मंत्री जाम्बवान भी बाण खाकर गिरा था। उससे आँखें नहीं खोली जातीं थी, सीने में दर्द होता था। विभीषण ने कहा, तुम तो महाबली हो, उठकर जरा मंत्रणा करो, भला और किसी से क्या बताऊँ। जाम्बवान ने कहा, मेरे शरीर में लाखों बाण चुभे हैं, मैं आँखें नहीं खोल पा रहा हूँ, सीने में दर्द होता है। बातों के आभास से अनुमान लगाता हूँ कि तुम विभीषण हो और मुझसे बातें करने आए हो। जाम्बवान ने कहा, तुमतो धार्मिक और सुजन हो, जरा पता लगाओ पवननन्दन कहाँ हैं। फिर दोनों परामर्श कर कोई उपाय सोचो कि इन्द्रजीत के बाणों से सबकी किस प्रकार रक्षा हो सकती है। विभीषण ने कहा, तुम तो बुद्धि में बृहस्पति के समान हो—इन्द्रजीत के बाणों से तुम्हारी भी मति मारी गई है।

**दुर्लभ जिस तक पैंठ, सामना होने पर जो है खूँख्वार।**
**ऐसा नृप शैतान! सम्पदा, शक्ति, सकल उसकी बेकार॥ ५॥**

उसकी अतुल सम्पदा भी व्यर्थ है, यदि लोगों को उसका साक्षात् दुर्लभ हो, और दैववश साक्षात् हो भी जाय तो वह भयावह-खूँख्वार सिद्ध हो। उसकी सम्पदा शैतान की सम्पदा है! ॥ ५॥

कडुञ्जॊल्लन् कण्णिलन् आयिन् नॆडुञ्जॆलवम्
नीडिन्ऱि आङ्गे कॆडुम्॥ ६॥

**क्रूरदृष्टि, कटुवाची नृप की भले सम्पदा अतुल महान्।**
**दिन-दिन ह्रास, विनाश एक दिन उसका निश्चित! रक्खो ध्यान!॥ ६॥**

कटुवाणी और क्रूरदृष्टि वाले नरेश की अतुल सम्पत्ति भी अधिक न टिक कर शीघ्र विनाश को प्राप्त होती है॥ ६॥

कडुमॊऴियुम् कैयिहन्द तण्डमुम्वेन्दन्
अडुमुरण् तेय्क्कुम् अरम्॥ ७॥

**लोहे की रेती लोहे को जिस प्रकार कर देती चूर्ण।**
**दण्ड कठोर और कटुवाणी करती नृप को स्वयं विचूर्ण॥ ७॥**

चुभनेवाले कटुवचन कहनेवाले और [अपराध की तुलना में] सीमा से बाहर कठोर दण्ड देनेवाले शासक के ये कुलक्षण, शत्रु का सामना पड़ने पर, उस शासक ही का सफ़ाया कर देते हैं; जैसे लोहे की ही रेती लोहे को रेत-रेत कर विचूर्ण कर देती है॥ ७॥

इन्नत्ताट्ऱि ऎण्णाद वेन्दन् शिन्नत्ताट्ऱिच्
चीऱिन् शिरुहुम् तिरु॥ ८॥

**अविश्वास सचिवों पर करना, उन पर क्रोध और अपमान।**
**अपना वैभव स्वयं नष्ट कर, अपना ही करना अवसान[1]॥ ८॥**

अपने मंत्रियों और सलाहकारों की सलाह पर कान न देकर, उलटे उन पर क्रोध उतारनेवाले शासक और उसकी सम्पत्ति का विनाश निश्चित है॥ ८॥

शॆरुवन्द पोऴ्तिल् शिऱैशॆय्या वेन्दन्
वॆरुवन्दु वॆय्दु कॆडुम्॥ ९॥

---

१ पतन, समाप्ति।

**रहते समय, सुरक्षा का जो नरपति करता नहीं उपाय।**
**रिपु से रण में सदा विकम्पित, समझो उसको नष्टप्राय ॥ ९ ॥**

जो राजा समय रहते दुर्ग अथवा सुरक्षा के साधन नहीं बनाता, वह युद्ध उपस्थित होते ही थरथरा कर ढह जायगा ॥ ९ ॥

कल्लार्प् पिणिक्कुम् कडुङ्गोल् अदुवल्लदु
इल्लै निलक्कुप् पॊरै ॥ १० ॥

**मूर्ख मंत्रियों का निबाह सम्भव है, जहाँ क्रूर है भूप।**
**ऐसे नृप मतिमन्द सर्वथा हैं धरती पर भार-स्वरूप[1] ॥ १० ॥**

क्रूर और नृशंस शासक सदैव मूर्ख और अयोग्य लोगों को अपने समीप रखता है [और उन्हीं की सलाह पर चलता है, सुयोग्य व्यक्ति उसकी क्रूरता के कारण टिक नहीं पाते।] ऐसा क्रूर नरेश धरती के लिए सबसे बड़ा भार है [धरती उसका अस्तित्व सहन नहीं करती, शीघ्र ही निगल लेती है।] ॥ १० ॥

## अदिहारम् (अध्याय) ५८

## कण्णोट्टम् (कृपादृष्टि)

कण्णोट्टम् ऎन्नुम् कऴिबॆरुङ् गारिहै
उण्मैयात् उण्डिव् वुलहु ॥ १ ॥

**शासन अटल, प्रजा पर यदि शासक की है मधुमयी निगाह।**
**यदि विपरीत, क्रूर को निज करनी से समझो हुआ तबाह ॥ १ ॥**

यदि शासक कृपादृष्टियुक्त हो तो यह विश्व [अर्थात् उसका साम्राज्य] अटल रहेगा; अन्यथा विनष्ट हो जायगा। [इस पद में कृपा-दृष्टि को रूपवती स्त्री के रूप में कहा गया है। अर्थात् किसी शासक की शोभा जनता के प्रति कृपापूर्वक व्यवहार करने में है। तभी उसका शासन स्थिर रहेगा; अन्यथा उसके कठोर व्यवहार से जनता दुखी रहेगी और उसका परिणाम उस शासक के शासन का विनाश होगा।] ॥ १ ॥

कण्णोट्टत् तुळ्ळदु उलहियल् अह्दिलार्
उण्मै निलक्कुप् पॊरै ॥ २ ॥

---

१ पृथ्वी के लिए बोझ।

**इस्थिर विश्व ! विश्व की इस्थिरता का कृपादृष्टि आधार ।**
**करुणाहीन क्रूर शासक को समझो इस धरती का भार ॥ २ ॥**

विश्व-जीवन का आधार कृपा-दृष्टि है। [कृपादृष्टियुक्त शासक भूमि का भार वहन करता है।] अन्यथा वह शासक भूमि के लिए मात्र भार है। [पोरै = भार] ॥ २ ॥

पण्णॆन्ऩाम् पाडऱ्कु इयैबिन्ऱेल् कण्णॆन्ऩाम्
कण्णोट्टम् इल्लाद कण् ॥ ३ ॥

**गायन में रस कहाँ, राग-रागिनियाँ अगर ताल-बेताल ?**
**कृपादृष्टि से रहित नयन, तो समझो नयन-रहित है भाल[1] ॥ ३ ॥**

यदि राग-रागिनियाँ संगीत के अनुकूल न हों तो उन राग-रागिनियों से क्या प्रयोजन ? अर्थात् राग-रागिनियाँ और संगीत परस्पर असंबद्ध हों तो उससे श्रोताओं को रसानुभूति नहीं हो सकती। उसी प्रकार कृपा-दृष्टिरहित नयनों का भी कोई प्रयोजन नहीं होगा। [पण् = राग; कण् = नयन] ॥ ३ ॥

उळबोल् मुहत्तॆवन् शॆय्युम् अळविन्ऩान्
कण्णोट्टम् इल्लाद कण् ॥ ४ ॥

**नयनों से ललाट की शोभा, यदि नयनों में करुणा-भाव ।**
**करुणहीन लोचन यदि निर्मम, तो लोचन का कौन प्रभाव ? ॥ ४ ॥**

मुख पर दो आँखों के विद्यमान रहने से क्या हो जायगा यदि उनमें कृपादृष्टि न हो ? ऐसी आँखें लोगों को केवल दिखलाई देंगी। किन्तु उनका कोई प्रयोजन नहीं होगा ॥ ४ ॥

कण्णिऱ् कणिहलम् कण्णोट्टम् अह्दिन्ऱेऱ्
पुण्णॆन्ऱु उणरप् पडुम् ॥ ५ ॥

**दृग मणिरत्न, दृष्टि जिनकी बरसाती है करुणा के फूल ।**
**यदि अन्यथा, न दृग हैं, समझो वे वस्तुतः वृथा दृग्शूल ॥ ५ ॥**

कृपा-दृष्टि आँखों का आभूषण है। उसी में आँखों का सौन्दर्य है। उसके अभाव में दोनों आँखें दो व्रण [ज़ख्म] होंगी। [अणिहलम् = आभूषण; पुण् = व्रण] ॥ ५ ॥

मण्णो डियैन्द मरत्तनैयर् कण्णोडु
इयैन्दुकण् णोडा दवर् ॥ ६ ॥

---

१ मस्तक ।

**पल्लव-शाखाहीन विटप के ठूँठ धरा पर जड़ बेकार;**
**निर्मम करुणाहीन नयन भी उसी भाँति हैं व्यर्थ असार[1] ॥ ६ ॥**

जिन शासकों की आँखों में स्नेहिक दृष्टि अथवा कृपादृष्टि नहीं रहती उनकी वे आँखें उसी प्रकार निष्प्रयोजन सिद्ध होंगी जिस प्रकार किसी चित्र में मिट्टी के ऊपर चित्रित वृक्ष किसी प्रयोजन का नहीं होगा। [फलों से लदा हुआ चित्र-लिखित वृक्ष किस प्रयोजन का है ?] ॥ ६ ॥

कण्णोट्टम् इल्लवर् कण्णिलर् कण्णुडैयार्
कण्णोट्टम् इन्मैयुम् इल् ॥ ७ ॥

**नयन सफल हैं, यदि नयनों से बहती कृपा-सुधा की धार।**
**नयनहीन, जिसके नयनों में नहीं दया का है सञ्चार ॥ ७ ॥**

जिन शासकों की आँखों में कृपादृष्टि नहीं रहती वे आँखों से रहित हैं। उन्हीं को आँखों से युक्त कहा जाएगा जिनकी आँखों में कृपादृष्टि का अभाव न हो ॥ ७ ॥

करुमम् शिदैयामर् कण्णोड वल्लार्क्कु
उरिमै युडैत्तिव् वुलहु ॥ ८ ॥

**राज-धर्म, कर्तव्य-कर्म पर दृढ़, परंतु ममता का भाव।**
**सर्वजयी, सब अनुगत[2] उसके, सकल धरा पर अमिट प्रभाव ॥ ८ ॥**

शासक को चाहिए कि वह कृपादृष्टियुक्त हो; साथ ही अपने शासन-धर्म से भी च्युत न हो। यह विश्व ऐसे ही शासक का होगा। ॥ ८ ॥

ऑरुत्ताट्रुम् पण्बिनार् कण्णुम् कण्णोडिप्
पॊरुत्ताट्रुम् पण्बे दलै ॥ ९ ॥

**दया-क्षमा उनके ऊपर भी, जिनसे हमें पहुँचता क्लेश।**
**करुण-कृपा की दृष्टि गुणों में सर्वोपरि है सौम्य विशेष ॥ ९ ॥**

शासक का महत्वपूर्ण धर्म यह है कि वह अपने प्रति अपराध करने-वाले को भी कृपापूर्वक क्षमा कर दे ॥ ९ ॥

पेयक्कण्डुम् नञ्जुण्डु अमैवर् नयत्तक्क
नाहरिकम् वेण्डु पवर् ॥ १० ॥

**सज्जनता-सौम्यत-सुयशा के यश में जिसको प्रीति अपार,**
**करता है स्वीकार विहँसकर कूट-हलाहल[3] का उपहार ॥ १० ॥**

जो शासक सभी लोगों के लिए प्रिय, उदात्त, शालीनता से युक्त रहना

---

१ तत्वहीन २ पीछे चलनेवाले ३ कठिन विष।

चाहेगा, वह वैरभाव से दिया हुआ विष भी पी लेगा; चाहे वह विष उसकी आँखों के सामने ही क्यों न मिलाया गया हो। [नञ्जु = विष; नाहरिकम् = शालीनता] ॥ १० ॥

## अदिहारम् (अध्याय) ५९

### ओट्राडल् (गुप्तचर-लक्षण)

ओट्रुम् उरैशान्र नूलुम् इवैयिरण्डुम्
तॆट्रॆन्ग मन्नवन् कण् ॥ १ ॥

**शासन-कला, गुप्तचर-मण्डल—ये शासक के दोनो नैन;**
**इनके बल पर ही शासक निश्चिन्त सदा पाता सुख-चैन ॥ १ ॥**

गुप्तचर-सेवा और शासन-संबन्धी प्रामाणिक नीतिग्रंथ, ये दोनों शासक की दो आँखें हैं ॥ १ ॥

ऍल्लार्क्कुम् ऍल्लाम् निहळ्पवै ऍञ्ञान्रुम्
वल्लरिदल् वेन्दन् तॊळिल् ॥ २ ॥

**सकल रिआया के, प्रति दिन प्रत्येक काम की रखना थाह—**
**नित का यह कर्तव्य, न इसके विना नृपति का कभी निबाह ॥ २ ॥**

शासक का उत्तम धर्म यह जान लेना है कि हर समय सर्वत्र सभी के जीवन में क्या-क्या होता है। यह गुप्तचर-सेवा द्वारा ही संभव है ॥ २ ॥

ओट्रिनान् ऑट्रिप् पॊरुळ्दॆरिया मन्नवन्
कॊट्रम् कॊळक्किडन्द दिल् ॥ ३ ॥

**गुप्तचरों के द्वारा सच्ची हालत का न जिन्हें है ज्ञान,**
**कभी न उनको विजय मयस्सर, जो रहते ग़ाफ़िल नादान ॥ ३ ॥**

जो शासक अपने गुप्तचरों से प्राप्त सूचनाओं से वास्तविकता की जानकारी प्राप्त करना नहीं जानता वह विजयी नहीं हो सकता। अर्थात् उसी शासक को विजय प्राप्त होगी जो गुप्तचरों की सहायता से वास्तविक स्थिति की सूचना पाकर उसके अनुसार शासन-धर्म का निर्वाह करे ॥ ३ ॥

विनैशॆय्वार् तम् शुट्रम् वेण्डादार् ऍन्राङ्गु
अनैवरैयुम् आराय्वदु ऒट्रु ॥ ४ ॥

**नाते-गोते, राजसेवकों, रिपु-आदिक की गति-विधि जान,**
**सही सूचना देते रहना—सफल गुप्तचर की पहचान ॥ ४ ॥**

गुप्तचर का लक्षण यह है कि वह शासक के सेवकों, उसके रिश्तेदारों, उसके वैरियों आदि पर निगरानी रखे, और उनकी बातों तथा कार्य की जाँच करे ॥ ४ ॥

कडाअ उरुवॊडु कण्णञ्जा दियाण्डुम्
उहाअमै वल्लदे ऒट्रु ॥ ५ ॥

**असंदिग्ध है छद्म[1] वेश, संदिग्ध दशा में भी भयहीन-**
**रहकर भेद न खुलने देना, कुशल वही जासूस प्रवीन ॥ ५ ॥**

वही सफल गुप्तचर है जो ऐसा भेस बदल सके जिस पर किसी को सन्देह न हो, और जो किसी को सन्देह हो जाने पर भी निडर रहकर किसी भी परिस्थिति में राज़ न खोल दे। सन्देह की दृष्टि से भले ही कोई गुप्तचर को क्यों न देखे, फिर भी उसे अपना राज़ व्यक्त नहीं होने देना चाहिए ॥ ५ ॥

तुऱन्दार् पडिवत्त राहि इऱन्दारायन्दु
ऎन्ऱॆयितुम् शोर्विलदु ऒट्रु ॥ ६ ॥

**पीर-फ़क़ीर-वेश में निर्भय विविध रहस्यों को ले जान।**
**संकट में भी भेद न खोले, सही भेदिये की पहचान ॥ ६ ॥**

गुप्तचर को चाहिए कि वह प्रवेश-योग्य सभी स्थानों में संन्यासी, तीर्थयात्री आदि का भेस धारण कर प्रवेश करे, सभी ज्ञातव्य रहस्यों को जान ले, और भले ही कोई उसे सन्देह से पकड़कर परेशान करे, फिर भी अपने रहस्यों को प्रकट न होने दे ॥ ६ ॥

मऱैन्दवै केट्कवट् राहि अऱिन्दवै
ऐयप्पाडु इल्लदे ऒट्रु ॥ ७ ॥

**विविध रहस्यों को निकालना खोज, जान लेना सब मर्म;**
**फिर संशय-सन्देह न रहना—चतुर गुप्तचर का यह धर्म ॥ ७ ॥**

गुप्तचर वह होता है जो दूसरों के गुप्त रहस्यों का पता लगाने में समर्थ है। उसे अपने द्वारा पता लगायी गयी बातों में किसी प्रकार का सन्देह भी नहीं होना चाहिए ॥ ७ ॥

---

१ नबवाटी, खुफ़िया।

ऑट्ऱॊट्ऱित् तन्द पॊरुळैयुम् मट्ऱुमोर्
ऑट्ऱिनाल् ऑट्ऱिक् कॊळल् ॥ ८ ॥

**एक गुप्तचर की खबरों पर अन्य गुप्तचर की परिपुष्टि,**
**है कर्तव्य कुशल-शासक का, तभी न सम्भव छल की सृष्टि ॥ ८ ॥**

जब कोई गुप्तचर पता लगायी गयी गुप्त सूचना की जानकारी देता है तब शासक को चाहिए कि किसी दूसरे गुप्तचर को भेजकर पहले गुप्तचर से प्राप्त जानकारी की सच्चाई की परख कर ले। [यह इसलिए कहा गया है कि कभी-कभी किसी शासक का गुप्तचर दूसरे शासक द्वारा दिये हुए प्रलोभन में पड़कर ग़लत सूचना भी दे सकता है।] ॥ ८ ॥

ऑट्ऱॊट् रुणरामै आळ्ह उडन्मूवर्
शॊल्तॊक्क तेऱप् पडुम् ॥ ९ ॥

**एक काम पर कई गुप्तचर करना पृथक्-पृथक् तैनात,**
**पृथक् सूचनाएँ समान हों, समझो मिली तथ्य की बात ॥ ९ ॥**

गुप्तचर सेवा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि गुप्तचरों को एक-दूसरे का पता न हो। एक ही बात के संदर्भ में जहाँ तीन गुप्तचरों की सूचनाओं में समानता हो, वहाँ उस बात को सत्य समझा जाए ॥ ९ ॥

शिऱप्पऱिय ऑट्ऱिन्गट् चॆय्यऱ्क; शॆय्यिन्
पुऱप्पडुत्ता नाहुम् मऱै ॥ १० ॥

**विश्वसनीय गुप्तचर का अनुचित है सार्वजनिक सम्मान।**
**इस प्रकार है निज भेदों पर सबका स्वयं खींचना ध्यान ॥ १० ॥**

शासक को चाहिए कि वह विशेष सूचनाएँ प्रदान करनेवाले गुप्तचर का सम्मान सार्वजनिक रूप से न करे; क्योंकि ऐसा करने से वह अपने राज़ को स्वयं ही प्रकट करनेवाला सिद्ध होगा। [यदि गुप्तचर का सार्वजनिक सम्मान किया जाए तो कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो यह जानने का प्रयास करेंगे कि वह कौन है, उसका सम्मान क्यों किया जाता है, आदि। तब रहस्य के स्पष्ट होने में विलम्ब नहीं होगा।] ॥ १० ॥

## अदिहारम् (अध्याय) ६०
## ऊक्कमुडैमै ( कार्य-तत्परता )

उडैयर् ऎनप्पडुवदु ऊक्कम् अह्दिल्लार्
उडैयदु उडैयरो मट्ऱु ॥ १ ॥

**सब निधियों का वह अधीश है जिसमें कर्मठता-पुरुषार्थ।**
**किन्तु अकर्मठ-निरुद्यमी[1] की सारी निधियाँ भी हैं व्यर्थ ॥ १ ॥**

जिस व्यक्ति में कार्य-तत्परता है उसी के बारे में कहा जाएगा कि उसके पास सब कुछ है। सब कुछ होते हुए भी कार्य-तत्परता-विहीन व्यक्ति के बारे में क्या यह कहा जा सकता है कि उसके पास सब कुछ है? [उत्तर है "नहीं"।] ॥ १ ॥

उळ्ळम् उडैमै उडैमै पॊरुळुडैमै
निल्लादु नीङ्गि विडुम् ॥ २ ॥

**कृतसंकल्प मनस्वी होना—यही सम्पदा की है खान।**
**संसारी सम्पदा सकल—इन नाशवान् का वृथा गुमान[2] ॥ २ ॥**

कार्य-तत्परता ही किसी व्यक्ति की स्थायी संपत्ति है। अन्य सारी संपत्तियाँ अस्थायी और विनष्ट होनेवाली हैं। [उळ्ळम् = हृदय; इस शब्द से हृदय की प्रवृत्ति 'तत्परता' का अर्थ लिया गया है।] ॥ २ ॥

आक्कम् इळन्देमॆन्ऱ् ऱल्लावार् ऊक्कम्
ऒरुवन्दम् कैत्तुडै यार् ॥ ३ ॥

**दृढ़ संकल्प उद्यमी, दुख में—दुरवस्था में, नहीं निराश।**
**कठिन अभावों में कर्मठता देती उसको सदा प्रकाश ॥ ३ ॥**

जिस व्यक्ति के पास मानसिक शक्ति की संपत्ति हो वह अन्य संपत्ति के विनष्ट होने पर भी दुखी नहीं होगा ॥ ३ ॥

आक्कम् अदर्विऩायच् चॆल्लुम् अशैविला
ऊक्कम् उडैयान् उऴै ॥ ४ ॥

**पुरुषारथ-संकल्प-युक्त के सकल विभव होते हैं दास।**
**उस सतेज को स्वयं ढूँढ कर विभव पहुँचते उसके पास ॥ ४ ॥**

जो व्यक्ति अपार उत्साही है और कर्म के प्रति तत्पर है, वैभव उसके घर का पता लगाता हुआ वहाँ पहुँच जाता है ॥ ४ ॥

वॆळ्ळत् तऩैय मलर्नीट्टम् मान्दर्दम्
उळ्ळत् तऩैयदु उयर्वु ॥ ५ ॥

**कमल-नाल उठता है ऊँचे, ज्यों-ज्यों जल में हुआ उठान।**
**प्रबल-मनोरथ संकल्पी की शक्ति बनाती उसे महान् ॥ ५ ॥**

जल-स्तर के अनुसार पुष्प के डंठल की लम्बाई का स्तर होता है।

---

१ अकर्मण्य २ गर्व।

और कैसी ही सनदे हुक्मरानी लेकर आया हो, जुर्अत[1] न हो सकती थी कि उनके हलक़े में क़दम रखे। "मच्छी-भवन" को अगरचिः क़स्रे इमारत हासिल थी लेकिन शेख़ज़ादों ने उसे अपनी मौरूसी जायदाद बना लिया था और देहली से जो वाली आता इसके पास फटकने न पाता। इन्होंने मच्छीभवन के पास दो और इमारतें तामीर कर ली थीं जिनमें से एक का नाम "मुबारक-महला" था और दूसरे का नाम "पँच-महला" था। पँचमहले के निस्बत कोई कहता है कि पंच-मंज़िल इमारत थी और कोई कहता है कि एक दूसरे के पास पाँच महल बने हुए थे और उनके जुनूब तरफ़ एक बड़ा महराबदार फाटक था जो शेख़न दरवाज़ा कहलाता था। शहर से जो लोग शेख़ज़ादों की मज़कूरः इमारतों में जाना चाहते इसी फाटक में से होकर गुज़रते।

इस फाटक के महराब में बाँके शेख़ज़ादों ने एक नंगी तलवार लटका रखी थी और हुक्म था कि जो कोई यहाँ आना चाहे, कोई हो और कितना ही बड़ा शख्स हो, पहले इस तलवार को झुककर सलाम कर ले, फिर आगे क़दम बढ़ाये। किस की मजाल थी कि इस हुक्म की तामील में उज्र करे? यहाँ तक कि देहली से जो वाली और हाकिम मुक़र्रर होकर आते थे और शेख़ों से मिलने जाते तो उन्हें भी जबरन व क़हरन[2] उस तलवार के आगे ज़रूर सिर झुका देना पड़ता।

लखनऊ की यह हालत थी कि सन् ११६१ मुहम्मदी (सन् १७३२ ई०) में नव्वाब सआदत ख़ाँ बुरहानुल्-मुल्क दरबारे देहली से अवध के सूबेदार मुक़र्रर होकर आये, जिनसे हिन्दोस्तान के उस आख़िरी मशरिक़ी दरबार की बुनियाद पड़ी, जिसके उरूज को हम मशरिक़ी तमद्दुन का आख़िरी नमूना क़रार देकर बयान करना चाहते हैं। पहले नम्बर में हमने फ़ैज़ाबाद की हालत दिखाई जो इसी तमद्दुन का नक़्शे-अव्वलीन और इसी मशरिक़ी दरबारे लखनऊ का एक ज़मीमः[3] था। इस नम्बर में इस दरबार के क़ायम होने के पेश्तर के लखनऊ की तस्वीर दिखा दी और उस बिसात को अपने नाज़रीन के पेशे-नज़र कर दिया जिस पर इस दरबार ने अपनी शतरंज बिछाई। आइन्दः चन्द नम्बरों में हम इस नेशापूरी ख़ानदान की तारीख़े हुकूमत बयान करेंगे और इसके बाद दिखाएँगे, यह तमद्दुन क्या और कैसा था।

## अवध में नव्वाबी की बुनियाद

नव्वाब सआदत ख़ाँ बुरहानुल्-मुल्क के ख़ानदान के मुतअ़ल्लिक़ इसी क़दर बता देना काफ़ी है कि मीर मुहम्मद नसीर नाम नेशापूर के एक सय्यदज़ादे जिनका सिल-सिलए-नसब इमाम मूसा काज़िम रज़ि० से मिलता है, सन् ११३५ मुहम्मदी (सन् १७०६ ई०) अहदे-बहादुरशाह में वारिदे हिन्दोस्तान हुए। इनके बड़े बेटे मीर

---

१ हिम्मत  २ बल से विवश होकर  ३ परिशिष्ट।

मुहम्मद बाक़र साथ-साथ आये जिन्होंने यहाँ शादी कर ली और बाप-बेटों ने नाज़िमे-बंगाला की ज़ेरे हिमायत अज़ीमाबाद पटना में सुकूनत इख्तियार की। मुहम्मद बाक़र को हिन्दोस्तान की बीवी से ख़ुदा ने एक बेटा दिया जो बाद को शेरजंग के मुअ़ज़्ज़िज़ लक़ब से मशहूर हुआ।

मीर मुहम्मद नसीर के आने के दो साल बाद उनके छोटे बेटे मीर मुहम्मद अमीन भी नेशापूर से हिन्दोस्तान में आ गये। अज़ीमाबाद पहुँचे तो सुना कि वालिद ने सफ़रे आख़िरत किया और अब दोनों भाई मीर मुहम्मद बाक़र और मुहम्मद अमीन देहली को रवाना हुए, जहाँ पहुँचकर मीर मुहम्मद अमीन को शाहज़ादों की जागीर का ठेका मिल गया। इसमें इन्होंने ऐसी लियाक़त, मुस्तैदी और कारगुज़ारी दिखाई कि तमाम लोगों में शुहरत हो गई। इक़्बाल बरसरेयारी था। चन्द ही रोज़ बाद दरबारे शाही के मुअ़ज़्ज़िज़ अमीरों और मनसबदारों में शामिल हुए। फिर सूबेदारे अक्बराबाद की बेटी से निकाह हो गया और उस आला तबक़ए उमरा में शुमार किये जाने लगे जिस पर सल्तनत की जिम्मेदारी की ख़िदमतों के लिए इन्तख़ाब[1] की नज़रें पड़ती थीं।

उन दिनों देहली में सादाते बारहः[2] का ज़ोर था जिनसे रअ़य्यत[3] तो रअ़य्यत ख़ुद बादशाह सलामत भी डरते थे। मुहम्मद अमीन ने इनको क़त्ल कराकर सय्यदों का ज़ोर हमेशा के लिए तोड़ दिया और लड़ाई में ऐसी शुजाअ़त दिखाई कि दरबारे शाही से मनसबे हफ़्त-हज़ारी और सात हज़ार सवारों की सरदारी के साथ "बुरहानुल्-मुल्क बहादुर जंग" का खिताब अता हुआ और उसी वक़्त अक्बराबाद के सूबेदार मुक़र्रर हुए। इसके बाद बादशाही ख़वासों[4] की दारोग़गी अता हुई जो बड़ा मुअ़ज़्ज़िज़ उहदः था। उसके थोड़े दिनों बाद वह सूबए अवध के सूबेदार और इसके साथ ही बादशाही तोपख़ाने के दारोग़ा मुक़र्रर हुए। आदमी होशियार और निहायत ही बेदार-मग़ज़[5] और इसके लाथ बड़े बहादुर शुजाअ़ थे। शाही तोपख़ाने को अपने हाथ में लेकर इन्होंने ऐसी ज़बरदस्त क़ुव्वत पैदा कर ली जैसी इन दिनों सारे हिन्दोस्तान में किसी को नसीब न थी। उस ज़माने में कोड़ा के ज़मींदार भगवन्तसिंह ने सल्तनत से सरताबी[6] करके बड़ा ज़ोर बाँध रखा था और कई अफ़सर जो इसकी सरकोबी[7] को गये, इसके हाथ से मारे जा चुके थे। आख़िर बुरहानुल्-मुल्क इस मुहिम पर मामूर[8] हुए और यल्ग़ार[9] करते हुए पहुँचे। भगवन्तसिंह ने चालाकी से उनको घेर लिया और लड़ाई का रंग ऐसा बिगड़ा नज़र आया कि बड़े-बड़े बहादुरों के हाथ-पाँव फूल गये। मगर बुरहानुल्-मुल्क ने ऐसी जवाँमर्दी से मुक़ाबिला किया कि देर तक दुश्मनों के

---

**१ चुनाव, निर्वाचन २ अक्सर सय्यद जाति ३ प्रजा ४ खिदमतगारों ५ चैतन्य-मस्तिष्क ६ विद्रोह ७ दंड देना ८ नियुक्त ९ आक्रमण।**

नरग़े[1] में उनकी लम्बी सफ़ेद नूरानी डाढ़ी चमकती और रोब डालती रही। थोड़ी देर में भगवन्तसिंह उनके तीर का निशाना हुआ और दुश्मन भाग खड़ा हुआ।

बुरहानुल्-मुल्क की दूसरी मुहिम[2] इससे भी ज़बरदस्त थी। उन दिनों मरहठों का हिन्दोस्तान में बड़ा ज़ोर था। इन्होंने ताजदारे देहली से चौथ मुक़र्रर करा ली थी और बड़े-बड़े सूरमा उनके नाम से काँपते थे। बुरहानुल्-मुल्क ने मरहठों को ज़बरदस्त फ़ौज के साथ जाकर ऐसी सख़्त शिकस्त दी कि उनके हवास जाते रहे। नोकदुम[3] भागे और बुरहानुल्मुल्क ने तअक़्क़ुब[4] शुरू किया। वाक़िआते तारीख़ देखने से मालूम होता है कि अगर इस मौक़े पर बुरहानुल्-मुल्क ज़बरदस्ती न रोक दिए जाते तो वह बढ़कर मरहठों का इस्तीसाल[5] कर देते और सल्तनते मुग़लिया अपने अगले अहदे-शबाब की तरह सारे हिन्दोस्तान की सियाह व सफ़ेद की मालिक हो जाती। मगर इस बदनसीब ज़वाल-पिज़ीर[6] सल्तनत को मिटना ही था। दरबारियों की साज़िश और मुक़र्रबीन दरबार[7] के हसद[8] ने बुरहानुल्-मुल्क की रफ़्तार को रुकवा दिया।

इस बात ने बुरहानुल्-मुल्क को यक़ीन दिलाया कि बादशाह में अपने नेक व बद के सोचने की सलाहियत[9] नहीं और अहले दरबार बद-दियानत व ख़ुदग़रज़ हैं। फ़ौरन् मरहठों से सुलह कर ली। फिर इरादा किया कि अपने सूबे में जाकर क़ियाम करें और सब से अलग होकर अपने इलाक़े को मज़बूत और मुन्तज़िम[10] बना दें। ग़रज़ बुरहानुल्-मुल्क ने दिल में समझ लिया कि अब सल्तनते मुग़लिया पनपनेवाली नहीं है। अपना सूबा लेकर अलग हो जाना ही मुनासिब है और दरबारे देहली को उसकी क़िस्मत पर छोड़ देना चाहिए।

लखनऊ में जैसा कि हम बयान कर चुके हैं, शेख़ज़ादों का ज़ोर था; इन्होंने अपनी आदत के मुवाफ़िक़ इन्हें भी रोका। मगर बुरहानुल्मुल्क हिक्मते अमली से दाख़िल हो गए और नक्सीर भी न फूटने पाई। बुरहानुल्मुल्क के लखनऊ में दाख़िल होने के मुतअ़ल्लिक दो रिवायतें मशहूर हैं। एक यह कि वह बराबर बढ़ते चले आये, यहाँ तक कि अकबरी दरवाज़े पर रोके गये। चूँकि वह साबिक़ के[11] तमाम सूबेदारों के ख़िलाफ़ तजुर्बेकार, मतीन[12] और संजीदा शख़्स थे, ठहर गये, और महमूद नगर में पड़ाव डाल दिया। दो एक दिन के बाद शेख़ज़ादों की दावत की, उनसे बड़ी ख़ातिर तवाज़ो से पेश आये। लेकिन जिस वक़्त ग़ाफ़िल शेख़ज़ादे अल्वाने-निअ़मत का मज़ा लूटने में मस्रूफ़ थे, शाही फ़ौज ख़ामोशी के साथ चौक में दाख़िल हो रही थी, जो बराबर बढ़ती ही चली गई यहाँ तक कि मच्छीभवन के पास जा पहुँची।

---

१ भीड़ २ लड़ाई ३ साँस-साधकर बेतहाशा ४ पीछा करना ५ समूलनाश ६ अवनतोन्मुख ७ प्रमुख दरबारियों ८ डाह, रश्क ९ योग्यता १० समुन्नत ११ पिछले १२ बुद्धिमान्।

दूसरी रिवायत यह है कि मुहम्मद ख़ाँ बंगश ने बुरहानुल्मुल्क को बतला दिया था कि लखनऊ के शेख़ज़ादे बड़े शोरे:पुश्त[1] हैं, इनसे पेश पाना आसान नहीं। मगर क़ुर्ब व जवार के दूसरे श्यूख़ उनके ख़िलाफ़ हैं, आप उन लोगों से मदद लीजिए और उन्हीं की मदद से लखनऊ वालों को ज़ेर कीजिए। चुनाँचि: बुरहानुल्मुल्क ने काकोरी में क़ियाम करके श्यूख़े काकोरी को अपने मुवाफ़िक़ बना लिया। इन्हीं की मदद और रहबरी से आगे बढ़े और यह सुनकर कि महमूदनगर और अक्बरी दरवाज़े में मुक़ाबिले का सामान किया गया है, अस्ली रास्ते से कतराकर मग़रिब की तरफ़ कट गये। गऊघाट के पास दरिया के पार उतरे और पार की तरफ़ से आहिस्त: आहिस्त: आकर अचानक मच्छीभवन पर आ पड़े। ग़रज़ जो सूरत हो, इन्होंने बग़ैर इसके कि कोई मुज़ाहिम[2] हो, क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया।

जब मच्छी-भवन पर क़ब्ज़ा हो गया तो फिर कौन दम मार सकता था? शेख़ज़ादों के तमाम मुअ़ज़्ज़िज़ लोगों ने हाज़िर होकर आजिज़ी से सिर झुका दिया। बुरहानुल्मुल्क हाथी पर सवार होकर शेख़ेन दरवाज़े में दाख़िल हुए और उस तलवार को, जो बड़े बड़े बहादुरों से सलाम ले चुकी थी, अपनी तलवार से काटकर गिरा दिया। फिर शेख़ज़ादों से कहा—"हमारे क़ियाम के लिए मच्छी-भवन ख़ाली कर दो"। इसमें इन्होंने लैतोलअ़ल[3] करना चाही मगर न चली। आख़िर एक हफ़्ते मुहलत दी गई और इस मुद्दत के अन्दर श्यूख़ जो कुछ अस्बाब ले जा सके, उठा ले गये, और जो रह गया उस पर बुरहानुल्मुल्क के सिपाहियों ने क़ब्ज़ा किया। क़िले में जाकर रहने से पहले उसके पास जहाँ ख़ेमे डालकर वह रहे थे, वहाँ एक नौबतख़ाना तामीर करा दिया जिसमें दरबारे अवध के आख़िर अहद तक रोज़ाना छै वक़्त नौबत बजती थी।

उसके बाद बुरहानुल्मुल्क अयोध्या में गये और दरिया किनारे वह बंगला बनवाया जिसका हाल हम बयान कर चुके हैं। लेकिन वक़्तन फ़वक़्तन लखनऊ में आते और क़ियाम करते थे, क्योंकि सूबे का मुस्तक़र[4] यही शहह था। उनके ज़माने में यहाँ कई नये मुहल्ले आबाद हुए। मगर यह सब मुहल्ले उनके मुग़ल सरदाराने फ़ौज के पड़ाव के मुक़ामात थे जहाँ मुस्तक़िल सुकूनत के लिए लोगों ने मकान बनाना शुरू कर दिये। सय्यद हुसैन ख़ाँ का कटरा, अबूतुराबख़ाँ का कटरा, ख़ुदायार ख़ाँ का कटरा, बिज़न-बेग ख़ाँ का कटरा, मुहम्मद अली ख़ाँ का कटरा, बाग़ महानरायन, सराय मआलीख़ाँ और इस्माईल गंज (जो मच्छी-भवन के मशरिक़ तरफ़ था, अब खुद गया) सब उसी ज़माने के मुहल्ले या बुरहानुल्मुल्क के सरदाराने फ़ौज की लश्करगाहें हैं।

नव्वाब बुरहानुल्मुल्क छै ही बरस अवध और लखनऊ में रहने पाये थे कि सन् ११६७ मुहम्मदी (सन् १७३८ ई०) में नादिरशाह ने हिन्दोस्तान पर हमला कर दिया

---

१ उद्दण्ड, झगड़ालू २ लड़ाई ३ टालमटोल ४ स्थायी।

और वह निहायत ही ताकीद के साथ देहली में बुलाए गए। उस पुरफ़ितन ज़माने में जो कुछ वाक़िआत गुज़रे, उनको लखनऊ से तअ़ल्लुक़ नहीं। लखनऊ में अपना नायब और क़ायममुक़ाम बनाकर वह अपने भानजे और दामाद सफ़दरजंग को छोड़ गये थे। नादिरशाह देहली को लूट चुका था और क़त्लेआम करा चुका था, मगर अभी वहीं था कि नव्वाब बुरहानुल्मुल्क ने देहली में वफ़ात पाई। इनके भतीजे शेरजंग ने नादिरशाह से सिफ़ारिश उठवाई कि नव्वाब मरहूम[1] के बाद अवध की सूबेदारी इन्हें दी जाय।

लेकिन राजा लक्ष्मीनरायन ने जो बुरहानुल्मुल्क के मुअ़तमद[2] उहदेदारों में था, नादिरशाह की ख़िदमत में इस मज़मून की एक अर्ज़-दाश्त पेश कर दी कि "नव्वाब बुरहानुल्मुल्क शेरजंग से ख़ुश न थे और इसीलिए इन्होंने अपनी बेटी उनको छोड़कर सफ़दरजंग को दी जो इनकी नियाबत[3] करते थे और इस वक़्त भी उनकी तरफ़ से वहाँ मौजूद हैं। बुरहानुल्मुल्क के माल व असबाब की मालिक सरकार है, जिसे चाहे अता करे, इसलिए कि कोई वरसा[4] नहीं है। यह भी अर्ज़ है कि सफ़दरजंग बुर्दबार, ख़ुदातरस, लायक़ और वादे के सच्चे हैं और सिपाह इनसे ख़ुश है, क़तअ़ नज़र इसके हुज़ूर के लिए बुरहानुल्मुल्क ने दो करोड़ रुपये की रक़म का वादा किया था, इसके अदा करने का इन्तज़ाम नव्वाब सफ़्दरजंग ने कर लिया है, जिस वक़्त हुक्म हो हाज़िर किये जाएँ। इन वजूह से उम्मीद है कि हुज़ूर इन्हीं की सिफ़ारिश फ़रमाएँगे।" यह अर्ज़न्दा अर्ज़-दाश्त देखते ही नादिरशाह ने सफ़्दरजंग के लिए मुहम्मद शाह से ख़ुद ही ख़िलअ़ते सूबेदारी ले लिया और अपने एक मुसाहिब और दो सौ सवारों के साथ अवध में सफ़दरजंग के पास भेजा। यों ख़िलअ़ते सूबेदारी पहिनकर सफ़दरजंग ने वह दो करोड़ का नज़राना नादिर के पास भिजवा दिया और अपने इलाक़े पर हुकूमत करने लगे।

सफ़दरजंग का पूरा नाम मिर्ज़ा मुक़ीम अबुल मन्सूर ख़ाँ सफ़दरजंग था। गो उनमें बुरहानुल्मुल्क की सी सच्ची बहादुरी, सादगी, रास्तबाज़ी और जफ़ाकशी न थी, मगर निहायत फ़ैयाज़, बलन्द हौसला, रहमदिल, रिआयापरवर और मुन्तज़िम थे। शहर से तीन मील की मसाफ़त[5] पर इन्होंने क़िला जलालाबाद तामीर कराया और मच्छी-भवन के अन्दर पँचमहले की जो क़दीम इमारत थी उसे भी शेख़ज़ादों से ले लिया और इसके एवज़ में दो गाँव में ७०० एकड़ ज़मीन शेख़ज़ादों को रहने और बसने के लिए अता की। जिससे अगरचि: शेख़ज़ादों पर ज़ुल्म हुआ मगर लखनऊ की आबादी को वुसअत[6] और तरक़्क़ी हासिल हुई। मच्छी-भवन को सफ़दरजंग ने अज़सरे नौ[7] तामीर कराया और उसे बहुत दुरुस्त किया।

लेकिन सफ़दरजंग पाँच ही बरस अपने सूबे में रहने पाए थे कि देहली में इनकी

---

१ स्वर्गीय नव्वाब  २ विश्वासी  ३ प्रतिनिधित्व  ४ उत्तराधिकारी
५ अन्तर, दूरी  ६ फैलाव  ७ नये सिरे से।

तलबी हुई और राजा नवलराय को अपनी नियाबत[१] पर लखनऊ में छोड़कर वह देहली चले गये। नवलराय इल्मदोस्त, वक़्त का पावन्द, जफ़ाकश,[२] बहादुर और बहुत बड़ा मुन्तज़िम था और इसके साथ उसे ख़ुदा ने अपने आक़ा की सी उलू-उल-अज़्मी[३] और फ़ैयाज़ी भी दी थी। उसने इरादा किया कि मच्छीभवन के सामने दरिया पर एक पुल तामीर करे। पायों की बुनियाद डालने के लिए गहरे कुएँ खुदवाये। लेकिन पाये बनना शुरू नहीं हुए थे कि अपने आक़ा की तलब पर उसे अहमद ख़ाँ बंगश के मुक़ाबिले के लिए जाना पड़ा। इस मुहिम में वह बड़ी ज़बरदस्त फ़ौज लेकर गया, मगर मारा गया और पुल का काम जो छिड़ा था, नातमाम पड़ा रहा गया।

अहमद ख़ाँ बंगश उस ज़माने का बहादुर-तरीन शख़्स था। इसके मुक़ाबिले के लिए बुरहानुल्मुल्क की ज़रूरत थी। सफ़दरजंग इसके हरीफ़ मुक़ाबिल[४] न हो सकते थे। नतीजा यह हुआ कि अहमद ख़ाँ की और उनके साथ अफ़ाग़नः की क़ुव्वत तरक़्क़ी करती गई। सफ़दरजंग ने लाख हाथ-पाँव मारे, ख़ुद शहनशाहे-देहली तक को उसके मुक़ाबिले पर लाकर खड़ा कर दिया, मगर इसका कुछ न बिगाड़ सके और इसके इशारे से हाफ़िज़ रहमतख़ाँ ने अवध के शहरों और क़स्बों में लूट-मार शुरू कर दी। ख़ैराबाद पर क़ब्ज़ा कर लिया और ख़ुद अहमद ख़ाँ बंगश का बेटा महमूद ख़ाँ फ़ौज लेकर चला कि लखनऊ पर क़ब्ज़ा कर ले।

सन् ११७९ मुहम्मदी (सन् १७५० ई०) में पठानों ने मलीहाबाद में अपना थाना क़ायम किया और सन् ११७० मुहम्मदी (सन् १७५१ ई०) में महमूद ख़ाँ का कोई अज़ीज़ बीस हज़ार फ़ौज लेकर लखनऊ की तरफ़ चला। शहर के बाहर पड़ाव डाला और अपना एक कोतवाल मुक़र्रर करके शहर में भेजा। सफ़दरजंग के आदमियों से शहर ख़ाली था। जो चन्द थे भी, पठानों के आने की ख़बर सुनकर भाग खड़े हुए और पठानों के कोतवाल ने शहर में आकर बेएतदालियाँ[५] शुरू कर दीं।

उन दिनों शेख़ज़ादगाने लखनऊ में सब से ज़ियादः सरबर[६] आवुर्दः[७] शेख़ मुअज़्ज़िद्दीन थे। वह अफ़ाग़नः के सरदार से शहर के बाहर जाकर मिले। उसी वक़्त किसी ने उससे जाकर शिकायत की कि शहरवाले आपके कोतवाल की तहक़ीर[८] व तौहीन[९] करते हैं और कोई उसका हुक्म नहीं मानता। शेख़ मुअज़्ज़िद्दीन बोले— "क्या मजाल है कि कोई ऐसी गुस्ताख़ी करे। मैं जाता हूँ, मुफ़्सिदों[१०] को सज़ा दूँगा।" यह कहकर वापस आये और तमाम भाई-बन्दों को बुलाकर कहा—"पठानों के क़ौल व फ़ेल का एतबार नहीं। बेहतर यह है कि हम नव्वाब सफ़दरजंग का साथ दें और मुक़ाबिला करके पठानों को यहाँ से निकाल दें"। इसके बाद शेख़ मुअज़्ज़िद्दीन ने घर

१ प्रतिनिधित्व २ सहिष्णु, विपत्तियाँ और कष्ट सहनेवाला। ३ ऊँचा हौसला ४ प्रतिद्वन्द्वी। ५ असंयम ६ नेता, नायक ७ कृपापात्र ८ अपमान ९ अप्रतिष्ठा १० फ़िसाद करने वालों।

का ज़ेवर बेचकर फ़ौज जमा की और सारे शेख़ज़ादों को लेकर कोतवाल पर हमला किया। वह अपनी जान लेकर भागा और शेख़ साहब ने किसी मुग़ल को दरबारी लिबास पहनाकर अपने मकान में बिठा दिया और मनादी कर दी कि सफ़दरजंग ने अपनी तरफ़ से इस मुग़ल को कोतवाल बना कर भेजा है। इसके साथ ही अली (रज़ि०) के नाम का एक सब्ज़ झंडा खड़ा किया और लोग उसके नीचे आकर जमा होने लगे।

यह हालत सुनकर पठानों ने हमला कर दिया। शेख़ज़ादों ने जान तोड़कर मुक़ाबिला किया और अपनी पुरानी शुजाअत दिखा दी। पठान मुक़ाबिले की ताब न ला सके। पन्द्रह हज़ार फ़ौज के साथ भागे और मौक़ा पाकर शेख़ज़ादों ने पठानों को सारे मुल्के अवध से निकाल बाहर किया।

दो साल बाद जब अहमद ख़ाँ बंगश से सुलह हो गई तो सन् ११८२ मुहम्मदी (सन् १७५३ ई०) में नव्वास सफ़दरजंग फिर लखनऊ में आये और महदी घाट पर आकर ठहरे। एक ख़ास मकान अपने रहने के लिए बनवाया और सजाया और सिपाह की दुरुस्ती में मसरूफ़ हुए। लेकिन इसकी मुहलत न मिली। उसी साल सुलतानपूर के क़रीब पापड़घाट में पड़ाव था कि इन्तक़ाल किया। लाश पहले फ़ैज़ाबाद की गुलाबबाड़ी में ले जाकर ज़मीन सुपुर्द की गई, फिर थोड़े दिनों के बाद हड्डियाँ देहली में ले जाकर दफ़न की गईं, जिन पर निहायत ही आलीशान मक़बरः मौजूद है और सैयाहाने-अर्ज़[1] इसे आज तक इबरत[2] व इज़्ज़त की निगाह से देखते हैं।

## फ़ैज़ाबाद से लखनऊ

सफ़दरजंग मन्सूर अली ख़ाँ के इन्तकाल के बाद सन् ११८२ मुहम्मदी (सन् १७५३ ई०) में उनके बेटे नव्वाब शुजाउद्दौलः मसनदनशीन हुए, जिनके कुछ हालात इस मज़मून के पहले हिस्से में बयान हो चुके हैं। वह एक मुज़तरिब[3] और बेक़रार[4] तबीअत के उलू-उल्-अज़्म[5] फ़र्मांरवा थे, लेकिन बद-क़िस्मती से उनका अहद बड़े-बड़े फ़ित्नों और यादगारे ज़माना इन्क़लाबों[6] से भरा हुआ था। दुनिया की दो ज़बरदस्त तारीख़ी क़ौमों और क़ुव्वतों की क़िस्मत का फ़ैसला इन्हीं की आँखों के सामने हुआ। पहले पानीपत की महशर-अंगेज लड़ाई हुई जिसमें अहमद शाह दुर्रानी, शुजाउद्दौलः और नजीबउद्दौलः के साथ ख़वानीने रोहेलखंड की तमाम जबरदस्त फ़ौजें एक तरफ़ थीं और मरहठों का टीड़ीदल दूसरी तरफ़। इस लड़ाई ने सन् ११९० मुहम्मदी (सन् १७६१ ई०) में एक ही दिन के अन्दर फ़ैसला कर दिया कि हिन्दोस्तान चाहे मुसलमानों का रहे या न रहे, मगर मरहठों का नहीं हो सकता। उसके बाद बक्सर का क़ियामत-खेज़ मैदान गर्म हुआ, जिसमें अंग्रेज़ों की बाक़ायदा फ़ौज एक तरफ़ थी

---

१ पृथ्वी के यात्री २ नसीहत ३ बेचैन ४ अशान्त ५ हौसलेमंद ६ क्रान्तियों।

और शुजाउद्दौलः का लश्करे कसीर एक तरफ़। इस लड़ाई ने, जंगे पानीपत के चार साल बाद सन् ११९३ मुहम्मदी (सन् १७६१ ई०) में चौबीस घंटे के अन्दर इस बात का फ़ैसला कर दिया कि हिन्दोस्तान अब मुसलमानों का नहीं, अंग्रेज़ों का है।

इन लड़ाइयों से पहले शुजाउद्दौलः अगरचिः लखनऊ ही में रहे, लेकिन बड़ी-बड़ी मुह्तिमों[1] पोलीटिकल मशग़ूलियतों और फ़ौजी इस्लाहों[2] से इन्हें इतनी मुहलत ही न मिली कि शहर की तरक़्क़ी व आरायश की तरफ़ तवज्जुः करें। उन्होंने क़िले बनवाये, गढ़ियाँ क़ायम कीं, फ़ौजी सामान और आलाते जंग[3] को फ़राहम किया। इसकी फ़ुर्सत न मिली कि अपने घर को दुरुस्त और अपने शहर को आरास्तः करें। बक्सर की लड़ाई के बाद, जैसा कि हम बयाँ कर चुके हैं, वह फ़ैज़ाबाद में जाकर अक़ामत-गुज़ीं हो गये। इसीलिए लखनऊ इन बरकतों से महरूम रह गया। सन् १२०४ मुहम्मदी (सन् १७७५ ई०) में इन्होंने सफ़रे आख़िरत किया और नव्वाब आसिफ़उद्दौलः उनके जानशीन हुए।

आसिफ़उद्दौलः ने मसनदे हुकूमत पर क़दम रखते ही, माँ से नाराज़ होकर लखनऊ की राह ली और यही वह ज़माना है जब से दरबारे अवध की क़ुव्वते फ़रमाँ-रवाई घटने और लखनऊ की ज़ाहिरी रौनक़ बढ़ने लगी। बक्सर का मैदान जीतने के बाद अंग्रेज़ों ने दरबारे अवध में दख़्लदिही के बहुत से हुक़ूक़ हासिल कर लिये थे। जिनकी बिना पर यहाँ फ़ौजी तरक़्क़ियों की रोक-टोक की जाती और हमेशा ग़ायर-नज़र[4] से इस बात की निगरानी की जाती कि हुकूमते अवध को फिर ऐसी क़ुव्वत न हासिल होने पाये कि उसकी फ़ौजें दोबारा अंग्रेज़ी लश्कर के सामने सफ़-आरा हो सकें। ताहम शुजाउद्दौलः जब तक फ़ैज़ाबाद में ज़िन्दः रहे फ़ौजी इस्लाह ही में मसरूफ़ रहे और रात-दिन इसी बात की धुन थी कि जिस तरह बने अपनी क़ुव्वत को बढ़ायें। चुनाँचिः मुंशी फ़ैज़बख़्श अपनी तारीख़ "फ़रह बख़्श" में उसी ज़माने का चश्मदीद हाल बयान करते हैं कि "जल्दी भरने और फ़ैर करने के एतबार से शुजाउद्दौलः की फ़ौज की बन्दूक़ों के मुक़ाबिले में अंग्रेज़ी फ़ौज की बन्दूक़ें कोई वक़अत न रखती थीं।"

लेकिन आसिफ़उद्दौलः का अहद शुरू होते ही यह सब बातें तशरीफ़ ले गईं। अंग्रेज़ों ने बड़ी होशियारी के साथ अपनी दख़्लदिही के हुक़ूक़ को बढ़ाना शुरू किया और निहायत ही दानाई से आसिफ़उद्दौलः को इस बात पर आमादा कर दिया कि फ़ौजी इस्लाह की तरफ़ से बे-परवा होकर दूसरे मशाग़ल में जी बहलायें। आसिफ़उद्दौलः को ख़ुद भी फ़ौज का ज़ियादः शौक़ न था। इन्हें लुटाने और मज़े उड़ाने के लिए रुपये की ज़रूरत थी, जो बग़ैर फ़ौज के मौक़ूफ़ किये पूरी न हो सकती थी। इसलिए इन्होंने थोड़ी सी फ़ौज रख ली। बाक़ी सब को माज़ूल[5] कर दिया;

---

**१ प्रबन्धों　२ सुधार　३ हथियार, अस्त्र-शस्त्र　४ तीक्ष्ण दृष्टि　५ पद से अलग, बर्ख़ास्त।**

बेशक़ मुसलमान भाई-भाई हैं, पस अपने भाइयों के दर्मियान सुलह क़ायम रक्खो। [सू० हुजुराति रु० १ आ० १०]

# अह़ादीस

### २३१[१] सदक़: की क़िस्में

हज़्रत अबू हुरैर: (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, लोगों के हर जोड़ पर सदक़: है। दो आदमियों के दर्मियान अद्ल करना सदक़: है। आदमी की मदद जानवर के बारे में करो। उसको सवार कर दो या उसके सामान को उसकी सवारी पर लाद दो, सदक़: है। अच्छी बात कहो सदक़: है। हर क़दम जो नमाज़ के लिए उठाओ सदक़: है। और रास्ता से काँटा वग़ैरह हटा दो सदक़: है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

### २३२[२] लोगों के दर्मियान मुसालहत कराने में झूठ नहीं होता

हज़्रत उम्मॅ कुल्सूम (र०) बिन्त उक़्ब: से रिवायत है कि मैंने नबी (स०) से फ़रमाते हुए सुना है कि वह झूठा नहीं है जो लोगों के दर्मियान सुलह क़ायम करने के लिए झूठ बोले। उसको भली बात पहुँचाये और उससे भली बात कहे।× [बुख़ारी-मुस्लिम]

### २३३[३] एक मक़रूज़[1] का क़र्ज़ कम कराना

हज़्रत आ़यश: (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दरवाज़े पर झगड़ा करने वालों की आवाज़ सुनी। उनकी आवाज़ें तेज़ थीं। उनमें से एक अपने क़र्ज़ को कम कराता था और नर्मी चाहता था और दूसरा कहता था ख़ुदा की क़सम मैं कम न करूँगा। आप निकले और फ़रमाया, कहाँ है अल्लाह पर क़सम खाने वाला कि मैं नेकी न करूँगा। उसने कहा मैं हूँ या रसूलल्लाह, जो यह चाहे वह इसके लिए है†। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

× यानी दो शख़्सों में अगर नामुआफ़क़त हो गई हो और तीसरा आदमी उनमें से एक के पास जाये और कहे कि तुम्हारे मुख़ालिफ़ ने तुम्हारी तारीफ़ की या तुम्हारा मद्दाह है और दूसरे के पास जाकर भी यही कहे तो वह झूठा कहे जाने का मुस्तहक़ नहीं है।

† वह समझ गये कि हुज़ूर (स०) का मन्शा यह है कि इसके लिए आसानी कर दी जाये। उन्होंने फ़ौरन क़ुबूल कर लिया।

---

१ क़र्ज़दार, ऋणी।

### २३४ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का एक क़बीले में मुसालहत कराने के लिए तशरीफ़ ले जाना

हज़्रत सह्ल (र०) बिन सअ़द से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़बर पहुँची कि बनी अम्र बिन औफ़ के दर्मियान झगड़ा है, तो आप उन लोगों के दर्मियान सुलह् कराने के इरादे से तशरीफ़ लाये। और आपके साथ कुछ और भी लोग थे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम बैठे थे कि नमाज़ का वक़्त आ गया। हज़्रत बिलाल (र०) हज़्रत अबूबक्र (र०) के पास आये और कहा ऐ अबूबक्र (र०) क्या तुम लोगों की इमामत कर सकते हो? अबू बक्र (र०) ने फ़रमाया हाँ। हज़्रत बिलाल (र०) खड़े हो गये हज़्रत अबू बक्र (र०) ने आगे बढ़कर तक्बीर[1] कही, फिर लोगों ने भी कही। इतने में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ लाये और सफ़ में खड़े हो गये। लोग तालियाँ बजाने लगे। हज़्रत अबूबक्र (र०) नमाज़ की हालत में दूसरी तरफ़ मुतवज्जिः नहीं होते थे। लोगों ने जब ज़ियादः तालियाँ बजायीं तब मुतवज्जिः हुए तो देखा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ फ़रमा हैं। आपने हज़्रत अबूबक्र (र०) को नमाज़ क़ायम रखने का इशारः किया। हज़्रत अबूबक्र (र०) ने अपने हाथ बलन्द किये, अल्लाह की तारीफ़ की और पीछे पलट के सफ़ में खड़े हो गये। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम आगे आये और लोगों को नमाज़ पढ़ाई। जब फ़ारिग़ हुए तो लोगों की तरफ़ मुतवज्जिः हुए और फ़रमाया ऐ लोगो! तुमको क्या हुआ जब कोई नयी चीज़ नमाज़ में पेश आयी तुम तालियाँ बजाने लगे। तालियाँ तो औरतों के लिए हैं। कोई चीज़ अगर नमाज़ में हारिज हो तो सुब्हानल्लाह कहो। जब सुब्हानल्लाह कहोगे जो सुनेगा मुतवज्जिः हो जायेगा। और ऐ अबूबक्र (र०) तुमने नमाज़ क्यों न पढ़ाई। जबकि हमने तुम्हारी तरफ़ इशारः भी किया। उन्होंने कहा कि अबू क़ुहाफ़ः के बेटे को रवा[2] नहीं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने नमाज़ पढ़ाये।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

---

१ अल्लाहो अक्बर २ उचित।

# कमज़ोर व ग़रीब मुसलमानों की फ़ज़ीलत[1]

आयत

वस्बिर् नफ़्सक मअ़ल्लज़ीन यद्अ़ून रब्बहुम् बिल्ग़दाति वल्-अ़शिय्यि युरीदून वज्हहू व ला तअ़्दु अ़ैनाक अ़न्हुम् ...

अपने नफ़्स[2] लोगों के साथ रोको जो अपने रब को सुबह व शाम पुकारते हैं और उसकी रज़ा चाहते हैं और तुम्हारी आँखें उनसे न फिरें।
[सू० कह्फ़ि, रु० ४ आ० २८]

# अहादीस

२३१८ दोज़ख़ और जन्नत के लोगों का फ़र्क़

हज़्रत हारिसः (र०) बिन वहब से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है, फ़रमाते थे क्या मैं तुमको जन्नत वालों की ख़बर दूँ। हर कमज़ोर जो कमज़ोर समझा जाता है अगर अल्लाह पर क़सम‡ खाये तो अल्लाह तआ़ला उसकी क़सम पूरी करता है, और क्या मैं तुमको दोज़ख़ वालों की ख़बर दूँ। हर मुतकब्बिर[3] और बख़ील[4] शख़्स। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२३१९ ग़रीब मुसलमान की फ़ज़ीलत

हज़्रत सह्ल (र०) बिन सअ़द से रिवायत है कि एक आदमी नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास से गुज़रा। आपने लोगों से फ़रमाया इस आदमी के मुतअ़ल्लिक़ तुम्हारा क्या ख़याल है। लोगों ने कहा यह आदमी सरदार है। वल्लाह अगर यह पयाम[5] दे तो इस का निकाह हो जाये, अगर सिफ़ारिश करे तो इसकी सिफ़ारिश क़ुबूल की जाये। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ामोश रहे। फिर दूसरा आदमी आया, आपने फ़रमाया इसके मुतअ़ल्लिक़ तुम्हारा क्या ख़याल है, कहा या रसूलुल्लाह! यह मुसलमानों के फ़ुक़रा[6] में है। अगर यह पयाम दे तो

‡ यानी अगर यों कह दे कि ख़ुदा की क़सम यों हीं होगा तो अल्लाह उसकी ज़बान की लाज रक्खेगा।

१ श्रेष्ठता २ इन्द्रियों की वासनाओं को ३ घमण्डी, अहंकारी ४ कंजूस
५ शादी का प्रस्ताव ६ फ़क़ीरों।

रद कर दिया जाये, सिफ़ारिश करे तो क़ुबूल न की जाये, और बात कहे तो सुनी न जाये। आपने फ़रमाया पहले जैसे ज़मीन भर से बेहतर है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

### २३७ जन्नत-दोज़ख़ की आबादी

हज़्रत अबू सअ़ीद (र०) ख़ुदरी से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया जन्नत और दोज़ख़ में झगड़ा हुआ, दोज़ख़ ने कहा मुझ में सर्कश[1] और मग़रूर[2] हैं। जन्नत ने कहा मुझ में कमज़ोर और मिस्कीन[3] लोग हैं। अल्लाह तआ़ला ने उन दोनों के दर्मियान फ़ैसला किया। फ़रमाया, जन्नत तू मेरी रहमत है, तेरे ज़रीए मैं जिस पर चाहूँगा रहम करूँगा। और दोज़ख़ तू मेरा अ़ज़ाब है, तेरे ज़रीए जिस पर चाहूँगा अ़ज़ाब करूँगा। और तुम दोनों का भरना मेरे ज़िम्मे है। [मुस्लिम]

### २३८ दुनिया में वज़नी[4] अल्लाह के यहाँ बे-वज़न[5]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, क़ियामत के दिन मोटा, लाँबा तड़ंगा आदमी आयेगा और उसका वज़न अल्लाह के नज़दीक एक मच्छर के पर के बराबर न होगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

### २३९ एक ग़रीब हब्शी का ख़याल

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि एक हब्शी औ़रत मस्जिद की सफ़ाई में रहती थी, या जवान मर्द था। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने न देखा तो लोगों से उसके मुतअ़ल्लिक़ सवाल किया। लोगों ने कहा, उसका इन्तिक़ाल हो गया। आपने फ़रमाया, तुमने मुझे ख़बर क्यों न की, गोया उन्होंने उसको हक़ीर समझा। आपने फ़रमाया, मुझे उसकी क़ब्र बतलाओ। लोगों ने पता दिया तो आपने उस पर नमाज़ पढ़ी फिर फ़रमाया यह क़ब्रें अपने रहने वालों पर तारीकी[6] से भरी रहती हैं। और अल्लाह तआ़ला इनकी क़ब्रों को मेरी नमाज़ की वजह से रौशन कर देता है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

यह पैग़म्बराना शान की बात है कि पहले के मुतअ़ल्लिक़ कुछ न फ़रमाया।

---

१ उद्दण्ड २ अहंकारी ३ दीन, असहाय ४ बड़प्पन वाला ५ बड़प्पनहीन। ६ अँधेरा।

२६० अक्सर जन्नती

हज़्रत उसामः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, मैं जन्नत के दरवाज़े पर खड़ा हुआ। उसमें अक्सर दाख़िल होने वाले मिस्कीन[1] थे और दौलतमन्द रोक दिये गये थे। लेकिन दोज़ख़ वालों को आग का हुक्म दिया गया। मैं दोज़ख़ के दरवाज़े पर खड़ा हुआ तो अक्सर उसमें दाख़िल होने वाली औरतें थीं। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२६१ तीन बच्चों ने माँ की गोद में गुफ़्तगू की

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया गहवारह में तीन ही ने गुफ़्तुगू की। हज़्रत ईसा (अ०) बिन मरयम ने और उस बच्चे ने जिसको जुरैज की तरफ़ मन्सूब करते थे। और जुरैज का क़िस्सा यह है कि वह एक आबिद[2] आदमी थे, उन्होंने एक अिबादतगाह बना रखी थी, उसमें रहा करते थे। एक दिन उनकी माँ आयीं, वह नमाज़ पढ़ रहे थे। उन्होंने उनको आवाज़ दी, जुरैज ने कहा ऐ परवरदिगार, क्या करूँ माँ को जवाब दूँ कि नमाज़ पढ़ूँ। वह नमाज़ पढ़ते ही रहे, माँ चली गयीं। दूसरे रोज़ फिर आयीं और आवाज़ दी, वह फिर नमाज़ में थे। उन्होंने कहा ऐ परवरदिगार, माँ और नमाज़ का मुक़ाबला है, वह फिर नमाज़ पढ़ते रहे। माँ ने कहा, ऐ अल्लाह, उस वक्त तक इसको न मार जब तक यह बुरी औरतों का मुँह न देख ले। एक दिन बनी इस्राईल जुरैज और उनकी अिबादत का ज़िक्र कर रहे थे। एक औरत ने कहा (जिसकी ख़ूबसूरती जरबुलमसल थी) कि अगर तुम कहो तो मैं उनको फ़ित्नः में डाल दूँ। वह उनके पास आई, उन्होंने इल्तिफ़ात न किया[3]। वह एक चरवाहे के पास गयी जो जुरैज की अिबादतगाह में रात को रहा करता था। वह मुलव्वस हुआ[4]। जब उसके लड़का हुआ तो कहा यह जुरैज का लड़का है। लोग जुरैज के पास आये और उनको उस अिबादतगाह पर से उतारा और उसको मुन्हदिम कर दिया[5], और उनको मारना शुरू किया। उन्होंने कहा, आख़िर क्या बात है? लोगों ने कहा तुमने गुनाह किया, उन्होंने कहा बच्चा कहाँ है लोग उसको लाएँ। उन्होंने कहा अच्छा मुझे नमाज़ पढ़ लेने दो, उन्होंने नमाज पढ़ी, नमाज़ पढ़ने के बाद बच्चे के पास आये और उसके पेट में उँगली मारी और कहा ऐ बच्चे, तेरा बाप कौन है? बच्चे ने कहा, फ़लाना चरवाहा है। बस फिर क्या था लोगों ने जुरैज के हाथ-पाँव चूमना शुरू किये। और

१ ग़रीब, दीन  २ भक्त  ३ नज़र न डाली  ४ पाप में फँसा  ५ इबादतगाह को नष्ट कर दिया।

तबर्रुकन इन पर हाथ फेरने लगे। और कहने लगे हम तुम्हारी अिबादत-गाह सोने की तामीर करेंगे। वह बोले नहीं, जैसे पहले थी वैसी ही बना दो।

तीसरा बच्चा जो गोद में बोला, एक औरत का बच्चा था। माँ बच्चे को दूध पिला रही थी कि एक सवार बड़े तुज़ुक[1] व एहतिशाम[2] के साथ उधर से गुज़रा। माँ ने उस को देखकर दुआ की कि ख़ुदाया मेरा बच्चा भी इसी शान व शौकत का हो। बच्चा दूध छोड़कर सवार को देखने लगा और कहने लगा, ऐ परवरदिगार, मुझको इस जैसा न होने देना। यह कहकर बच्चा फिर दूध पीने लगा। कुछ देर के बाद मन्ज़र[3] सामने आया कि लोग एक लौंडी को तरह-तरह के जराइम[4] का इल्ज़ाम देते हुए और उसको बिलावजह मारते हुए उधर से गुज़रे। लौंडी सिर्फ़ 'ह्रस्बियल्लाहु व निअ्मल् वकील' कहती रही और रज़ा बिल्क़ज़ा पर उसका अमल रहा। बच्चे की माँ ने यह देखकर दुआ की, परवरदिगार मेरा बच्चा ऐसा न हो। बच्चा दूध छोड़कर उसको भी देखने लगा और कहने लगा कि ऐ अल्लाह, मुझको इसी लौंडी की तरह बनाना। अब माँ-बेटों में इस अम्र में सवाल-जबाब शुरू हुआ। माँ ने कहा कि मैंने सवार और उसकी शान को देखकर जब दुआ की कि मेरा बच्चा ऐसा ही हो तो तूने कहा कि ख़ुदा मुझको इस जैसा न बनाये। और इस लौंडी को जो ज़लील और रुस्वा की जा रही थी, मैंने देखकर जब कहा कि ख़ुदा तुझको ऐसी हालत में न मुब्तिला करे तो तूने कहा ख़ुदा मुझको ऐसा ही करे। बच्चे ने जवाब दिया कि ऐ माँ, सवार एक निहायत ही मुतकब्बिर[5] और ज़ालिम शख़्स था, इसलिए मैंने उसकी हालत अपने लिए नापसन्द की। और वह लौंडी जिसको तुम ज़लील समझती थीं हक़ीक़त में मज़लूमः[6] थी, इसलिए मैंने उसके दर्जे की तमन्ना[7] की। [बुख़ारी-मुस्लिम]

# यतीमों, मिस्कीनों और लड़कियों के साथ नर्मी

आयात

…वख़्फ़िज़् जनाहूक लिल्मुअ्मिनीन।

अपने बाज़ू मुसलमानों के लिए (बाहों को) झुका दो।

[सू० हिज़्रि रु० ६ आ० ८८]

---

१ सज्जा, साज २ शान शौक़त ३ दृश्य। ४ अपराधों ५ अहंकारी, घमण्डी ६ ज़ुल्म की सताई ७ अभिलाषा।

वस्बिर् नफ़्सक मअल्लज़ीन यद्ऊन रब्बहुम् बिल्ग़दाति वल्अशिय्यि युरीदून वज्हहू व ला तऽदु ऐनाक अन्हुम् ۖ तुरीदु ज़ीनतल्-हयातिद्दुन्या ۚ… ।

अपने नफ़्स को उन लोगों के साथ रोको जो अपने परवरदिगार को सुबह व शाम पुकारते हैं और उसकी रज़ा चाहते हैं। और तुम्हारी आँखें उनसे न फिरें कि तुम दुनिया की ज़िन्दगी की ज़ीनत चाहो।

[सू० कह्फ़, रु० ४ आ० २८]

फ़अम्मल्यतीम फ़ला तक़्हर् ۖ (९) व अम्मस्साइल फ़ला तन्हर् ۖ।

यतीम पर ज़बरदस्ती मत करो और सायल[1] को मत झिड़को।

[सू० ज़ुहा, रु० १ आ० १०]

अरऐतल्लज़ी युकज़्ज़िबु (१) बिद्दीनि ۖ फ़ज़ालिकल्लज़ी यदुऽउल्यतीम ۙ (२) व ला यहुज़्ज़ु अला तआमिल्-मिस्कीनि ۖ (३)।

क्या तुमने देखा जो दीन को झुठलाते हैं यह वही हैं जो यतीम को धक्के देते हैं और मिस्कीन को खाने पर रग़्बत नहीं दिलाते।

[सू० माऊनि, रु० १ आ० १-३]

## अहादीस

### २७२ ग़रीब मुसलमानों की फ़ज़ीलत[2]

हज़रत सअद (र०) बिन अबी वक़्क़ास से रिवायत है कि हम और इब्नि मस्ऊद (र०) और हुज़ैल का एक आदमी और बिलाल (र०), इनके अलावा दो आदमी और, जिनका नाम मैं भूल गया, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के साथ थे। क़ुरैश ने हम लोगों को देखकर नबी (स०) से दरख़्वास्त की कि आप इन लोगों को निकाल दीजिए ताकि यह हम पर जुरअत न करें। इस बात का आपके दिल में कुछ ख़याल गुज़रा§। अल्लाह तआला ने यह आयत उतारी—

१ सवाल करने वाला, भिक्षुक २ श्रेष्ठता।

§ कि शायद इस तरह यह अल्लाह के दीन की तरफ़ मुतवज्जिः हों और यह तो मेरे ही घर में फिर आजायेंगे।

व ला ततुरुदिल्लज़ीन यद्ऊन रब्बहुम् बिलग़दाति वल्अशिय्यि युरीदून वज्हहु ...

उन लोगों को न निकालो जो अपने रब को सुबह व शाम पुकारते हैं और रज़ा चाहते हैं। [मुस्लिम] [सू० अनआमि, रु० ६ आ० ५२]

२४१ ग़रीबों की दिल शिकनी

हज़्रत अम्र बिन (र०) आईज़ (र०) मुज़नी से रिवायत है (यह उन लोगों में से थे जिन्होंने बैअतॅ रिज़्वान की थी) कि सलमान (र०) सुहैब (र०) और बिलाल (र०) और कुछ लोग बैठे हुए थे कि अबू सुफ़्यान उधर से गुज़रे। तो उन लोगों ने कहा अभी तक अल्लाह की तलवारों† ने अल्लाह के दुश्मनों पर अपना असर नहीं किया। हज़्रत अबू बक्र (र०) ने कहा तुम क़ुरैश के सरदार और बुज़ुर्ग के मुतअल्लिक़ ऐसी बातें कहते हो। फिर नबी (स०) के पास आये और अपनी कही हुई बात की ख़बर दी। आपने फ़रमाया ऐ अबूबक्र (र०) तुमने शायद उन को नाराज़ कर दिया है, तो अल्बत्ता तुमने अपने रब को नाराज़ किया। हज़्रत अबूबक्र (र०) उन लोगों के पास आये और कहा ऐ भाइयो, क्या मेरी बात ने तुमको नाराज़ कर दिया। उन्होंने कहा नहीं, अल्लाह तुमको बख़्शे ऐ मेरे भाई‡। [मुस्लिम]

२४२ यतीम की किफ़ालत[1]

हज़्रत सह्ल बिन सअद (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, यतीम की किफ़ालत करने वाला और मैं जन्नत में इस तरह होगें, कल्मः की उँगली और बीच की उँगली और बीच की उँगली में कुछ फ़र्क़ रखकर बताया कि इस तरह§। [मुस्लिम]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, यतीम की किफ़ालत करने वाला, ख़्वाह उसका हो या दूसरे का हो, वह और मैं जन्नत में इस तरह होंगे, रावी ने कल्मः की उँगली मिलाकर बताया कि इस तरह। और वह रावी मालिक बिन अनस (र०) थे। [मुस्लिम]

† मतलब यह कि अबू सुफ़्यान अब तक ज़िन्दः हैं ? अल्लाह की तलवारों ने उनका काम तमाम नहीं किया ?

‡ सहाबः किराम में क्या मुहब्बत व उल्फ़त थी ! कोई किसी की बात से बुरा नहीं मानता था !

§ यानी अल्लाह उसको मुझसे बहुत क़रीब रक्खेगा।

१ भरण-पोषण, परवरिश।

सरलार्थ—आगे जनक जी बोले, "करोड़ सिंहों का बलवाला, बलिष्ठों में श्रेष्ठ बालि उस धनुष को देखकर हार गया, उसे तोड़ने की बात तो दूर रही। और ये दोनों सुकुमार बालक इतने बड़े धनुष का क्या कर सकेंगे?" (जनक की बातें सुनकर) विश्वामित्र छल से बोले "पक्षियों में श्रेष्ठ गण्डभैरव पक्षी अपनी चोंच से हाथी को पकड़ कर उड़ता है, फिर डाल पर बैठता है। लेकिन डाल नहीं टूटती। परन्तु भरत पक्षी के डाल पर बैठने से वह टूट जाती है।" (अर्थात् दैवयोग से असम्भव सम्भव हो जाता है। बालि भले ही हार गया हो, परन्तु ये धनुष को अवश्य ही तोड़ सकेंगे।) जनक जी बोले, "क्षत्रिय-वीर परशुराम ने उठाने में असमर्थ होकर जिस धनुष की पूजा की, ये दोनों बालक उसे कैसे तोड़ सकेंगे?" विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "वास्तव में परशुराम ब्राह्मण हैं। स्वधर्म का लंघन करके वे क्षत्रिय बने हैं। इसलिए इस धनुष को न तोड़कर उन्होंने ब्राह्मणोचित गुण से उसकी पूजा की।" (२४)

**विह्किरे—पक्षियों में; गण्डभेरण्ड—गण्डभैरव नामक ओड़िआ कहानी में वर्णित एक वृहत् काल्पनिक पक्षी; इसके दो चोंचें और चार पैर (मतान्तर में दो) होते हैं। हर, पैर और चोंच से यह एक-एक हाथी जमीन से उठाकर आकाश पर लिये उड़ सकता है। भारती—भरत पक्षी, भरद्वाज पक्षी; व्यभिचार—स्वधर्मलंघन, अतिचार; विप्र—ब्राह्मण। (२४)**

बाणासुर कार्त्तवीर्य्य सहस्रभुजरे हेज
टेकि न पारिले तहुँ कले उत्तर।
बृश्चिक कर्कट परि सिना ताहाङ्क माधुरी
नाग ब्यत्रके के आन धरणीधर।
विंशकर कहिबा नोहु।
बाळि अर्ज्जुनरे धराय़ाइछि य़ेहु। २५।

सरलार्थ—इसके बाद जनक जी ने कहा, "बलिपुत्र वाणासुर तथा सहस्रार्जुन अपने हज़ार हाथों से धनुष को उठा नहीं सके। यह ज़रा मन में सोचो तो सही।" विश्वामित्र ने कहा, "बिच्छुओं व केकड़ों की तरह उनके हाथों की संख्या भले ही बहुत बड़ी हो, परन्तु उनमें बल कितना है? नाग के बिना और कोई क्या धरणी का धारण कर सकता है?" जनक जी ने फिर कहा, "रावण भी धनुष को देखकर हार गया है।" विश्वामित्र ने कहा, "उसकी बात मत बोलिए। बालि तथा सहस्रार्जुन से पराजित होने के बाद उसके बल का पता लग चुका है।" (२५)

**बृश्चिक—बिच्छू; कर्कट—केकड़ा, ब्यत्रके—बिना; विंशकर—रावण; अर्जुन—सहस्रार्जुन। (२५)**

विघ्नराज महासेन लवण आदि राजन
प्रभा देखाइ मळिन भाव भाषिले ।
बञ्चक पराये तेबे मुखरे अनळे जबे
देखाई नाश भीरुक हेले दूषिले ।
बिबोध नुह हे जनक !
विभीते देखिबे ए अणाअ पिनाक । २६ ।

सरलार्थ—जनक जी ने फिर कहा, "गणेश, कार्त्तिकेय, लवण दैत्य आदि राजा लोग पहले तेज दिखाकर बाद में मलिन हो पड़े हैं ।" (अर्थात् पहले गर्व से आये और धनुष देखकर भय से भाग गये ।) इसके उत्तर में विश्वामित्र ने कहा, "स्यार पहले अपने मुख में अनल दिखाता है और बाद में भय पाने से उस अनल को बुझा देता है । (उसी प्रकार इन वीरों ने पहले तेज दिखाकर बाद में इस धनुष के दर्शन से कायरता से अपने-अपने तेज को हराया है ।) हे जनक ! तुम अबोध न बनो । हरधनु यहाँ पर मँगाओ, ये (राम-लक्ष्मण) निर्भयता से उसे देखेंगे ।" (२६)

**विघ्नराज—गणेश; महासेन—कार्त्तिकेय; बञ्चक—स्यार; विभीते—निडर होकर; अणाअ—लिवा लाओ; पिनाक—धनुष ।** (२६)

बितपन कले नेइ तपनवंशिक तहिँ
सभारे लोभा अनाइ नृप सकळ ।
विदर्भ, कर्णाट, भोट, सउराष्ट्र मरहट्ट,
कुन्तळ, केरळ, चोळ, सिन्धु, उत्कळ ।
बाह्लिक, तुरष्क, निषेध ।
बङ्ग, अङ्ग, कळिङ्ग, चोड़ङ्ग, मगध । २७ ।

बेदि, चेदि, मघ,मत्स्य, द्राविड़, गउड़,म्लेच्छ,
आरब, माळव, कच्छ, कुरु, पञ्चाळ ।
बनाउज, कनाउज, काश्मीर, कामेरी, कुञ्ज-
गळ, डाहाळ, लोमश, पुण्ड्र, कोशळ ।
बेलाउळ आदि ए ठिक ।
विशेषि कहिबा केते कहे जनक । २८ ।

सरलार्थ--विश्वामित्र की बातें सुनकर जनकजी ने सूर्यवंशीय राम-लक्ष्मण को लेकर सभा में प्रवेश किया । राम-लक्ष्मण की शोभा को देखकर राजसभा में बैठे नृपति लोग विमोहित हुए और बार-बार उन्हें

देखने को ललचाने लगे। अनन्तर जनक ने कहा, "यहाँ विदर्भ, कर्णाट, भोट, सौराष्ट्र, मरहट्टा, कुन्तल, केरल, चोल, सिन्धु, उत्कल, बाह्लिक, तुरुष्क, निषध, बंग, कलिंग, चोड़ंग, मगध, बेदि, चेदि, मघ, मत्स्य, द्रविड़, गौड़, म्लेच्छ, अरब, मालव, कच्छ, कुरु, पाञ्चाल, बनाउज, कन्नौज, काश्मीर, कामेरी, कुरुजांगल, डाहाल, लोमश, पुण्ड्रक, कोशल, बेलाउल आदि सभी देशों के राजा इकट्ठे हुए हैं। उनके बारे में हम विशेष करके कितना फिर बतावें? (२७,२८)

**वितपन—दीप्त, शोभायुक्त, (यहाँ उपस्थित); तपन वंशिक—सूर्यवंशीय राम-लक्ष्मण; लोभा—लोभित, विमोहित; अनाइ—देखकर। (२७-२८)**

बिनिन्द्य भूपतिमाने बहुदिनु अभिमाने
बस कि कारणे धनु आण न कह।
ब्याज दम्भ परा प्रते एबे दशरथ - सुते
आसिछन्ति देखिबाकु बळाइ स्नेह।
बोइले आणिबा से चाप।
बदन्ते अणाअ कहे नृपकळाप। २९।

सरलार्थ—जनकजी ने आगे कहा, "हे ख्यातनामा नरपतियो! तुम लोग बहुत दिनों से धनुष को तोड़ने के उद्देश्य से दर्प के साथ बैठे हुए हो, फिर भी किसलिए 'धनुष लाओ' ऐसा नहीं बोल रहे हो? इससे तुम लोगों का दम्भ तथा दर्प केवल बहाने के समान प्रतीत हो रहा है। (अर्थात् तुम लोगों में वास्तव में दम्भ तथा अभिमान है, ऐसा मालूम नहीं पड़ता।) अब राजा दशरथ के दो लड़के आग्रह-पूर्वक धनुष देखने को आये हुए हैं। तुम लोग कहोगे तो शिवधनु हम मँगायेंगे।" जनकजी की बात सुनकर राजाओं ने कहा, "धनुष मँगाओ।" (२९)

**विनिन्द्य—अनिन्द्य, प्रशंस्य, ख्यातनामा; व्याज—बहाना; नृपकळाप—राजाओं का समूह। (२९)**

बळवन्त एकुँ एक आज्ञाकु मल्ल अनेक
य़न्त्रे ओटारि आणिले मञ्जूष गोटि।
ब्रह्माण्डय़ाक धइले चळन्ता नाहिँ य़े तिळे
चक्र कट्कट् हुँकार नभे प्रकटि।
बाक्चातुरी मइथिळर।
बाणासन आसिला बिळम्ब न कर। ३०।

सरलार्थ--राजा जनक का आदेश पाकर एक से बढ़कर एक बलिष्ठ पहलवान धनुषाधार मञ्जूषा (पिटारी) को चक्रयुक्त यन्त्र से खींच लाये। अन्यथा समूचे ब्रह्माण्ड के लोगों के पकड़ने से भी वह पिटारी एक तिल भी नहीं सरकती। उस मंजूषा के चक्कों की 'कट् कट्' आवाज़ तथा पहलवानों की हुँकार से गगन का पवन गूँज उठा। इस समय मिथिलाधिपति जनक ने वचन-चातुरी प्रकाश करते हुए कहा, "धनुष आया। अब बिलम्ब न करके शीघ्र आओ।" (३०)

**मल्ल—पहलवान; ओटारि आणिले—खींच लाये; मञ्जूषा—पिटारी, सन्दूक; बाणासन—धनुष। (३०)**

बळवाने अधिक के जाणु कषटी कार्मुके
समूळे होइले सिना सुवर्ण्ण सर्वे।
बइदेहिक य़े आम्भे भूषण कर्म आरम्भे
कन्या-रत्न सङ्गे य़ोग करिबुँ तेबे।
बच-श्रोते गले समस्त।
ब्याघ्र-पतन य़न्ताकु चाहिँला मत। ३१।

सरलार्थ--जनकजी आगे बोले, "तुम लोग सब सुवर्ण (सु-वर्ण), अर्थात् उत्तम जाति के (क्षत्रिय) हो। इसलिए सुवर्ण (सोने) की तरह उत्तम-कान्ति-युक्त तुम लोगों के बल-तेज का अलंकार-कर्म आरम्भ करने में हम विदेहराज वणिक (सोनार) हैं। धनुष-रूपी कसौटी पत्थर पर तुम लोगों के बल-तेज को कसकर हम तुम लोगों की विशुद्धता की परीक्षा करेंगे। जिसका बल-तेज सबसे अधिक विशुद्ध सिद्ध होगा, उस वीर से हम अपनी कन्या-रत्न का योग करेंगे। अर्थात् शिवधनुभंग से जो वीर सबसे अधिक बलवान सिद्ध होगा, उसी के साथ सीता-रूपी रत्न का योग करके उसकी मर्यादा को बढ़ाएँगे।" जनक की ये बातें सुनकर सब राजा धनुष के समीप गये और पिटारी को यों देखने लगे मानों बाघ-पकड़नेवाले पिंजड़े को निहार रहे हों। (३१)

**बल-वाने—बलरूपी तेज में; के—कौन; कषटी-कार्मुके—धनुषरूपी कसौटी पत्थर; सुवर्ण—उत्तम जाति, सोना (श्लेष); बइदेहिक—वणिक, (सोनार), विदेह का राजा; यन्ता—पिंजड़ा (३१)**

विभावसु[1] विभावसु[2] एकस्थाने ए कि बशुँ
भावि नेत्र बुजि मुख पछकु कले।
बिळे[1] निद्रा हरि[1] बृष[1] बिळे[2] निद्रा हरि[2] बृष[2]
देखि य़था पळायित तथा होइले।
बासे य़ाइ केतकी पाशे।
बसे पलाशे भृंगाळि कि स्वभावुँ से। ३२।

सरलार्थ--(राम-लक्ष्मण को देखकर) सूर्य और अग्नि किस कारण से एकत्र अवस्थित हुए हैं ? ऐसा मन में विचार करके राजाओं ने आँखें मूँदकर पीछे मुँह फेर लिए। जैसे गुफा में सोये हुए सिंह को देखकर साँड और बिल में सोये हुए साँप को देखकर चूहे भाग जाते हैं, उसी प्रकार राजा लोग धनुष को देखकर भाग गये। भौंरे सुगन्ध के हेतु केवड़े के पास जाते हैं। परन्तु इस भय से कि उसके काँटों से कहीं उनके पंख न टूट जायँ, वे वहाँ से भागकर पलाशों पर जा बैठते हैं। (केवड़े में सुगन्ध होती है और साथ ही कांटे भी। भौंरे काँटों से डर कर सुगन्ध का उपभोग नहीं कर पाते। वे जाकर कण्टक-शून्य तथा सुगन्धहीन पलाशों पर बैठते हैं।) कायर राजाओं की वही हालत हुई। (३२)

**विभावसु[१]—सूर्य; विभावसु[२]—अग्नि (यमक); कि वशुं—किस हेतु; भावि—सोचकर, विचार करके; बुजि—मूँदकर; बिले[१]—गुफ़ा में; हरि[१]—सिंह; वृष[१]—सांड; बिले[२]—माँद में, विवर में (यमक); हरि[२]—साँप (यमक); वृष[२]—चूहा (यमक); बासे—सुगन्ध के हेतु; बसे—बैठता है; भृंगाळि—भ्रमरों का समूह; से—वह। (३२)**

बैराग्य आकुळ कूळे भासिले भूमिपकुळे
भाषिले जनक गम श्रीराम बेगे।
बताइ सुमित्रा-वत्स नाहिँ सुमित्रारि स्वच्छ
नम्रे धइले बाछिबे चापे ओळगे।
विश्वामित्र नेत्ररु जाणि।
बाहारिले शस्त्र देइ लक्ष्मण-पाणि। ३३।

सरलार्थ--विरक्ति-जनित आकुलता-रूपी तालाब में राजा लोग उतराने लगे। (सीता को प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा होने पर भी धनुष के हेतु अपनी अभिलाषा की सिद्धि में विफल हो रहे हैं। इसलिए उनके मन में विरक्ति आ गयी है। अनन्तर) जनक जी ने कहा, "हे श्रीराम! तुम शीघ्र जाओ। धनुष उठाने के लिए प्रयत्न करो।" यह सुनकर लक्ष्मण ने राम से कहा, "यहाँ हमलोगों का कोई अच्छा मित्र नहीं। सब स्पष्ट शत्रु दीखते हैं। आप सिर नवा कर धनुष को पकड़ेंगे तो, सब कहेंगे--आप धनुष को प्रणाम कर रहे हैं। (अतएव सिर नवाकर धनुष को मत पकड़िएगा।)" इसी समय विश्वामित्र की आँखों के संकेत से, लक्ष्मण के हाथ में अपना धनुष देकर, रामचन्द्रजी आगे बढ़े। (३३)

**वैराग्य—विरक्ति; भूमिपकुळे—राजासमूह, सुमित्रावत्स—लक्ष्मण; सुमित्रारि—(सुमित्र+अरि), सुमित्र—अच्छा मित्र; अरि—शत्रु; स्वच्छ—स्पष्ट; चापे—धनुष को, ओळगे—प्रणाम कर रहा है; पाणि—हाथ में। (३३)**

विक्रम गतिकि बिहि शरधा चापकु चाहिँ
केशरी गिरि मध्यरु सेहि स्वभावे ।
विराट मूर्त्ति ये धृत मञ्जु मञ्जूषरु सत
धनु आकर्षि आणिले पन्नग भावे ।
बकपुष्प-माळा माळिक ।
बिक्रयकु चाङ्गुड़ारु टेकिला दृक । ३४ ।

सरलार्थ—जैसे सिंह पर्वत की गुफा से साहस-पूर्वक गमन करता है, वैसे रामचन्द्रजी राजसभा के मध्य में विक्रम गति करके धनुष के समीप आये और उसे श्रद्धा के साथ देखने लगे। जिन रामचन्द्रजी ने विराट मूर्ति (क्षत्रिय मूर्ति) धारण की है, वे वि-राट मूर्त्ति (गरुड़मूर्ति) हुए। जैसे गरुड़ बिल से साँप को खींच लाता है, वैसे रामचन्द्र रूपी गरुड़ सुन्दर पिटारी (मंजूषा) रूपी बिल से धनुष-खींच लाये। फिर प्रभु ने धनुष को ऐसी आसानी से उठाया मानो माली ने डलिया से बेचनेवाली शिवमल्ली पुष्पों की माला को उठाकर पकड़ा हो। (३४)

**विक्रमगति—साहसपूर्वक गमन; केशरी—सिंह; विराट-मूर्ति—क्षत्रियमूर्ति, गरुड़मूर्त्ति (वि-पक्षी, राट—राजा; पक्षियों का राजा-गरुड़) (श्लेष); मञ्जु—सुन्दर, मञ्जूष—पिटारी; पन्नग—साँप; बकपुष्पमाला—शिवमल्ली या गूमा फूलों की माला। (३४)**

बक्त्रे[1] गळि राजन्यङ्क बक्त्रे[2] जनन जनक
एहि गिरि शरभेद हृदय करे।
विजयी ए त्रिपुरर[1] विजयी ए त्रिपुरर[2]
धइला धइला धनु अनायासरे।
विद्रावकु लज्जारे भाळि ।
विपलके अनाइले न पारि चळि । ३५ ।

सरलार्थ—"त्रिपुरासुर-विजयी शिवजी के धनुष को इन्होंने आसानी से पकड़ा इसलिए ये त्रिपुर (स्वर्ग, मर्त्त्य और पाताल) के विजयी हैं।" ऐसा वचन जनकजी के मुख से निकला। यह वचन-बाण राजाओं के कवचों को बेधकर उनके हृदयों में चुभ गया। लज्जा के मारे उन लोगों ने भागने को सोचा। परन्तु लज्जा तथा अपमान से इतने जड़ीभूत हो गये थे कि वहाँ से भाग नहीं सके और पलक-विहीन नेत्रों से राम की ओर निहारने लगे। (३५)

**वक्त्रे[1]—कवच में; वक्त्रे[2]—मुख में (यमक); जनन—जात; विजयी ए त्रिपुरर[1]—तीन पुरों (स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल) के विजयी ये रामचन्द्र हैं; विजयी ए त्रिपुरर[2]—**

त्रिपुर राक्षस के विजयी महादेव (यमक); विद्राव—पलायन, भागना; विपलके—पलक-विहीन नेत्रों से; अनाइले—निहारने लगे। (३५)

बराका[१]-बराङ्गी सीता बराक[२] करइ चिन्ता
जीवन याउ नोहिले हेले ए वर।
विमिळित नेत्र फिटे मुद्रित कञ्ज कि फुटे
प्रमोद - दायक परभृतङ्क स्वर।
व्यलीकता के बोलुथिला।
विधुर से दि-(दी-)नबन्धु दर्शने हेला। ३६।

सरलार्थ--बेचारी उत्कृष्टवर्णा सीता ने महादेवजी का ध्यान करते हुए कहा, "ये रामचन्द्र मेरे वर(पति)न होवें तो मेरा जीवन जावे, (पति) होवें तो मेरा जीव न जावे।" इसी समय, 'रामचन्द्र जी ने धनुष पकड़ा'—श्रेष्ठ भृत्यों का यह स्वर सीता के लिए आनन्ददायक हुआ। उनकी चिन्ता-रात्रि बीत गयी और नेत्र-कमल विकसित हुआ। (रात के बीतने पर परभृतों [कोयलों] का स्वर प्रभात की सूचना देता है। यह स्वर सुनकर लोग अपनी-अपनी आँखें खोलकर जगते हैं। उस समय रातभर का मुद्रित कमल विकसित होता है।) सब लोग आपस में बातचीत करने लगे, "कौन बोलता था कि यह धनुर्भंग-प्रण सीता के लिए दुखदायक हुआ है? रामचन्द्ररूपी सूर्य के दर्शन से सीता का हर्ष रूपी कमल विकसित हुआ। (अन्यार्थ पद्म का मुद्रित दोष कैसे दूर हुआ?) पद्म को बोध हुआ था 'राम चन्द्र हैं'। इसलिए वह मूँद गया था। अब दीनबन्धु (गरीबों के बन्धु) रामचन्द्र रूपी दिनबन्धु (दिवस के बन्धु, अर्थात् सूर्य) के दर्शन हुए। अर्थात् कमल को जब यह ज्ञात हुआ कि राम सूर्य हैं, तो वह विकसित हो उठा। (३६)

वराका[१]—बेचारी, दीना; वरांगी—उत्कृष्टवर्णा; वराक[२]—शिव (यमक); कंज—पद्म; परभृत—श्रेष्ठ नौकर, कोयल; (श्लेष); व्यलीकता—अप्रीतिकर कार्य, दुःख का कारण; विधुर—चन्द्र का (रामचन्द्र का); दिनबन्धु—दिवस के बन्धु अर्थात् सूर्य, दीनबन्धु—गरीबों के बन्धु। (३६)

बृन्दारक[१] - बृन्दारके[२] से ये पुच्छिले जनके
देवा शिञ्जिनी उत्तम बोलि से कहि।
वीर्य्य दम्भ बेनि योगे अष्टनागे[१] अष्टनागे[२]
धर धरणीकि बोले लक्ष्मण तहिँ।
विकळिते पृथिवी भाळे।
बसु हुळ पादअन्ते पड़िबि तळे। ३७।

सरलार्थ—धनुष को पिटारी से लाने के बाद देवश्रेष्ठ रामचन्द्र ने राजा जनक से पूछा, "क्या धनुष में प्रत्यंचा चढ़ाऊँ ?" जनक ने कहा, "अच्छी बात है, (प्रत्यंचा चढ़ाओ।)" उस समय लक्ष्मण ने कहा, "हे अष्टदिग्गजो! हे अष्टकुल नागो ! बल तथा धीरज से धरणी को धारण करो।" पृथिवी ने विकल होकर सोचा, "रामचन्द्र के पैर के प्रान्त भाग में मुझ पर धनुष की नोक रखते ही मैं पाताल में धँस जाऊँगी।" (३७)

**वृन्दारक[1]—देवताओं में; वृन्दारके[2]—श्रेष्ठ (अर्थात् देवताओं में श्रेष्ठ रामचन्द्र) (यमक); शिञ्जिनी—प्रत्यंचा; अष्टनाग[1]—आठ दिग्गज, आठ दिशाओं के हाथी; (ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदेञ्जनः। पुषदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीक्षश्च दिग्गजाः॥ इत्यमरः।) अष्टनाग[2]—अष्टकुलनाग; (अनन्तो, वासुकि पद्मो महापद्मोऽपि तक्षकः। कर्कोटकः कुलिकः शंखः इत्यष्टौ नागनायकाः॥ इति त्रिकाण्डशेष।) (यमक); हुळ—धनुष की नोक। (३७)**

बृद्धांगुळि परे पदे राम रखिले समदे
जाणिले ता अत्यन्त अधैर्य्य हेबार।
बासुकि कि बहे कूर्म बहिला से मनोरम
गुणवन्त गुण दत्त कले सत्वर।
बैनाशिक नाड़ी मो हेला।
बामे रहि अजगब विचार कला। ३८।

सरलार्थ—यह जानकर कि पृथिवी बड़ी अधीर हो रही है, रामचन्द्र जी ने अपने पैर के अँगूठे पर गर्व के सहित धनुष की नोक को रक्खा। कूर्म के सर्पराज वासुकि को वहन करने की तरह वह दृश्य मनोहर दिखाई दिया। गुणवन्त राम ने शीघ्र धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। उस समय रामचन्द्र जी के बायें हाथ में रहकर शिवधनु ने विचार किया, "मेरी विनाश की घड़ी उपस्थित हुई है, (इसी क्षण मेरा विनाश होगा। अजगव कृत्तिका नक्षत्र और दाशरथि पूर्व-भाद्रपद हुए; इन दोनों के मेल से विनाश करने वाली नाड़ी उपस्थित होती है।) (३८)

**समदे—गर्व के सहित; वैनाशिक नाड़ी—विनाश की दुर्दशा; अजगब—शिवधनु। (३८)**

विगूढ़वशे ओटारे प्रचण्ड मल्ल हस्तरे
एरण्ड दण्ड पड़िला परि भाजिला।
ब्रह्माण्ड-भाण्ड पूरित प्रळयकाळे एकत्व
चारिमेघ गर्जिला शबद गञ्जिला।
बिबुधे मूर्च्छित चेतारे।
बेळे प्राण अमृत रखिला विचारे। ३९।

पावला नृपवर । तीस नेदीच प्रत्युत्तर । मग सुमित्रेचें मंदिर । प्रवेशता जाहला । ५३ संसारतापें जे संतप्त । ते संतसमागमें जैसे निवत । तैसाचि राजा दशरथ । सुमित्रासदनीं सुखावला ।५४ तिचें नांव सुमित्रा सती । परी नामाऐसीच आहे रीती । वरकड नांवें जीं ठेविती । तीं तों व्यर्थचि जाणिजे । ५५ नांव ठेविलें उदार कर्ण । आडका वेंचितां जाय प्राण । बृहस्पति नाम ज्यालागून । धड वचन बोलतां न ये । ५६ कमलनयन नाम विशेष । परी दोहीं डोळ्यां वाढले वडस । क्षीरसिंधु नाम पुत्रास । परी तक्र तयासी मिळेना । ५७ नांव ठेविलें पंचानन । परी जंबुक देखतां पळे उठोन । जन्म गेला मागतां कोरान्न । सार्वभौम नाम तयातें । ५८ नाम ठेविलें जया मदन । तो निर्नासिक कुलक्षण । तैसी सुमित्रा नव्हे पूर्ण । करणी

---

वह नृपवर (दशरथ) परम खेद को प्राप्त हो गये। उन्होंने उस (कैकेयी को) को प्रत्युत्तर नहीं दिया। तदनन्तर वे सुमित्रा के गृह में प्रवेश कर गये। ५३

संसार के कष्ट (की आँच) से जो पीड़ित हैं, वे साधु-सन्तों की संगति से जैसे शान्ति को प्राप्त होते हैं, वैसे ही राजा दशरथ सुमित्रा के सदन में (आने पर) सुख को प्राप्त हो गये। ५४ उसका नाम सुमित्रा सती है। और फिर उसकी (आचरण-व्यवहार की) रीति उसके नाम के समान (अनुरूप) है। (अर्थात् उसमें नाम वाले शब्द के अर्थ के अनुरूप गुण हैं; 'नाम बड़े दर्शन खोटे'—जैसी स्थिति उसके विषय में नहीं है।) लोग जो अन्य नाम नियत करते हैं, उन्हें तो निरर्थक ही समझो। ५५ नाम तो रखा 'उदार कर्ण', लेकिन (प्रत्यक्ष उस व्यक्ति के) एक पैसा खर्च करते प्राण निकल जाते हैं। अथवा जिसका नाम 'बृहस्पति' है, ऐसे किसी व्यक्ति को ठीक से बात बोलना (करना) नहीं आए। किसी का नाम विशेष तो 'कमल-नयन' है, लेकिन उसके दोनों नेत्रों में सफेद माँड़ा बढ़ा (हुआ) है। किसी के पुत्र को 'क्षीरसिंधु' (दुग्धसागर) नाम दिया, लेकिन उसको छाछ भी नहीं मिलती। किसी का नाम 'पंचानन' ( = सिंह) रखा गया, लेकिन वह सियार को देखते ही उठकर भाग जाता है। और जिसका जन्म सूखी भिक्षा माँगते बीत गया है, उसका नाम 'सार्वभौम' (—सम्राट्) रखा हुआ है। जिसका नाम 'मदन' रखा हुआ (हो), वह हो नासिका-हीन नकचिपटा। वैसी सुमित्रा बिलकुल नहीं है। उसकी करनी उसके नाम के अनुरूप है। ५६-५९

नामासारिखी । ५९ नृप आला ऐकतां कर्णीं । समोर आली हंसगामिनी । दशरथाचिये चरणीं । मस्तक ठेवी सद्भावें । ६० स्त्रियांस देव तो आपला नाथ । पुत्रासी माता पिता सत्य । शिष्यासी गुरु दैवत । गृहस्थासी दैवत अतिथि पैं । ६१ म्हणोन सुमित्रेनें अजनन्दन । पूजिला षोडशोपचारेंकरून । उभी ठाकली कर जोडून । अधोवदन सलज्ज । ६२ कैकयीडोहळ्यांचें दुःख प्रबळ । राव विसरला हो सकळ । जैसा बोध ठसावतां निर्मळ । तमजाळ वितुळे पैं । ६३ राजा म्हणे सुमित्रेसी । काय डोहळे होताती मानसीं । ते मज सांग निश्चयेंसीं । कुरंगनेत्रे सुमित्रे । ६४ मग किंचित हास्य करून । बोले सलज्ज अधोवदन । जें ऐकतां सुखसंपन्न । अजनन्दन होय पैं । ६५ म्हणे हेच आवडी बहुवस । कौसल्यागर्भीं जगन्निवास । अवतरेल जो आदिपुरुष । जगद्वंद्य जगदात्मा । ६६ त्याची अहोरात्र सेवा बरवी । वाटे मम पुत्रेंचि करावी । जाणीव

---

राजा पधारे—यह कानों से सुनते ही वह हंसगामिनी (हंस की भाँति चलनेवाली) सामने आगे आ गयी और सद्भाव पूर्वक दशरथ के चरणों में उसने सिर रखा (नवाया) । ६० अपना-अपना पति स्त्रियों के लिए देवता है । पुत्र के लिए सचमुच माता-पिता देवता हैं । शिष्य के लिए गुरु देवता है और गृहस्थ के लिए अतिथि देवता है । ६१ इसलिए सुमित्रा ने अजराज के पुत्र दशरथ का (आवाहन, आसन आदि) सोलह उपचारों सहित पूजन किया और वह नीचे मुंह किये (सिर झुकाये) सलज्ज खड़ी रही । ६२ जैसे निर्मल ज्ञान के जम जाने पर अज्ञान रूपी अन्धकार का फैलाव विलीन हो जाता है, वैसे ही (सुमित्रा के यहाँ आने पर) कैकेयी के दोहद सुनकर अनुभव किये हुए समूचे बड़े दुःख को राजा पूरा भूल गये । ६३ (फिर) राजा ने सुमित्रा से पूछा—'हे मृगनयना सुमित्रा, तुम्हारे मन में कौन-से दोहद हो रहे हैं, मुझे निश्चय (सचमुच) ही बताओ ।' ६४ फिर वह ज़रा मुस्कराकर लज्जायुक्त हो नीचे मुँह किये बोली, जिसे सुनकर दशरथ सुख-सम्पन्न हो गये । ६५ उसने कहा—'(मुझे) यही बड़ी रुचि है कि जो जगत् के लिए वन्दनीय, जगदात्मा जगन्निवास आदिपुरुष कौसल्या के गर्भ से अवतरित हो जाएँगे, मुझे लगता है, मेरा पुत्र उनकी अच्छी सेवा रात दिन करे । वह (अपना) समूचा ज्ञान, बुद्धि (चातुर्य) उन पर निछावर करे । (उनकी) सेवा के अतिरिक्त और कोई दूसरी साधना मेरे पुत्र को मान्य न हो । अपने

शहाणीव आघवीं । ओंवाळावी तयावरूनि । ६७ सेवेपरतें थोर साधन । मम पुत्रासी न माने आन । आपुले अंगाचें हांतरुण । ज्येष्ठसेवनालागीं करूं । ६८ त्रिभुवनराज्य तृणासमान । त्याहूनि अधिक ज्येष्ठ भजन । चारही मुक्ति वाटती गौण । ज्येष्ठसेवेपुढें पैं । ६९ सुधारस त्यजोनि निर्मळ । कोणास आवडेल हाळाहळ । उत्तम सांडूनि तांदूळ । सिकता कां हो शिजवावी ।७० त्यजोनि सुंदर रायकेळें । कोण भक्षील अर्कफळें । कल्पद्रुमीं जो विहंगम खेळे । तो नातळे बाभुळेसी । ७१ मानससरोवरींचा हंस पाहीं । तो कदा न राहे उलूकगृहीं । बुडी दिधली क्षीराब्धिडोहीं । दग्ध वन नावडे तया । ७२ नन्दनवनींचा भ्रमर कदाकाळीं । अर्कपुष्पीं रुंजी न घाली । जेणें इंद्रभवनीं निद्रा केली । खदिरांगारीं न निजे तो । ७३ रंभेतुल्य जाया चांगली । सांडोनि प्रेत कोण कवळी । तैसी भजनीं आवडी धरिली । कदा विषयीं न रमे तो । ७४ म्हणोनि राजचक्र-चूडामणी । माझी आवडी ज्येष्ठभजनीं । ऐसे सुमित्रेचे शब्द

---

ज्येष्ठ भ्राता की सेवा के लिए अपनी देह की शय्या करे । ६६-६८ ज्येष्ठ भ्राता की सेवा (भक्ति) की तुलना में त्रिभुवन का राज्य घास (के तिनके) के समान है । ऐसे राज्य से ज्येष्ठ बन्धु की सेवा बड़ी है । ज्येष्ठ भाई की सेवा के सामने (सलोकता, समीपता, सरूपता और सायुज्यता नामक) चारों प्रकार की मुक्तियाँ साधारण (तुच्छ) प्रतीत होती हैं । ६९ निर्मल अमृतरस को त्याग कर हलाहल (विष) किसे अच्छा लगेगा ? उत्तम चावल छोड़कर सिकता (बालू) क्यों पकाएँ ? ७० सुन्दर राजकेले (=केले का एक उत्तम प्रकार) को छोड़कर आक के फल कौन खाएगा ? जो पक्षी कल्पवृक्ष पर कलोल करता है, वह बबूल (के वृक्ष) को स्पर्श (तक) नहीं करेगा । ७१ देखो, मानसरोवर में रहनेवाला हंस उल्लू के घर (घोंसले) में कदापि न रहेगा । जिसने क्षीरसागर के दह में गोते लगाये, उसे जला हुआ वन कभी पसन्द नहीं आता । ७२ नन्दनवन में रहनेवाला भ्रमर किसी भी समय आक के फूलों पर नहीं मँडराएगा । जिसने इन्द्र के प्रासाद में निद्रा की, वह खदिर (खैर वृक्ष) के अंगारों में न सोएगा । ७३ रम्भा के समान अच्छी पत्नी का त्याग कर प्रेत को कौन लिपटेगा (गले लगाएगा) ? उसी प्रकार जिसने भजन सेवा में रुचि ग्रहण की वह कभी भी विषय (सुख) में रममाण नहीं होता । ७४ (सुमित्रा कहती है—) इसलिए हे राजा, राजचक्रचूड़ामणि महाराज, मेरी रुचि ज्येष्ठ बन्धु की

कर्णीं। आकर्णिले दशरथें। ७५ वाटे अमृत प्राशन केलें। कीं त्रिभुवनराज्य हातासि आलें। तैसें नृपाचें मन संतोषलें। आलिंगिलें सुमित्रेसी। ७६ म्हणे ऐक सुकुमार राजसे। चंपक-कळिके परम डोळसे। तुवां डोहळे इच्छिले जे मानसें। ते मी सर्वस्वें पुरवीन। ७७ नाना भूषणें अलंकार। ओंवाळी तिजवरूनि नृपवर। दानें देवविलीं अपार। सुमित्रेहातीं याचकां। ७८ याउपरी ज्येष्ठ राणी। कौसल्या नामें ज्ञानखाणी। जे पुराणपुरुषाची जननी। ख्याती त्रिभुवनीं जियेची। ७९ जे परब्रह्मरसाची मूस। कीं निजप्रकाशरत्न-मांदुस। क्षीराब्धिजा-हृदयविलास। जिनें अंतरीं सांठविला। ८० जो इंदिरावर त्रिभुवनेश्वर। ज्याचे आज्ञाधारक विधि शचीवर। हृदयीं ध्याय अपर्णावर। कौसल्याउदरनिवासी तो। ८१ असो कौसल्येचे मंदिरीं। प्रवेशता जाहला श्रावणारी। सेवक

---

सेवा में है।' सुमित्रा के ऐसे शब्द दशरथ ने कानों से सुन लिए। ७५ तो उन्हें जान पड़ा कि उन्होंने अमृत पी लिया, अथवा तीनों भुवनों का राज्य हाथ आ गया। वैसे ही राजा का मन सन्तुष्ट हो गया (और) उन्होंने सुमित्रा का आलिंगन किया। ७६ उन्होंने कहा—'हे सुकुमारी, राजसी, चम्पक-कलिका, परम चतुर स्त्री, सुनो। तुमने मन में जो दोहद अनुभव किये हैं, उन्हें मैं पूर्णतः पूर्ण करूँगा।' ७७ (तदनन्तर) राजा ने अनेक प्रकार के आभूषण अलंकार उस पर से (निछावर कर) उतार दिये। उन्होंने सुमित्रा के हाथों याचकों को अनगिनित दान दिलवाये। ७८

इसके बाद कौसल्या नामक (वह) ज्येष्ठ रानी (पटरानी) है, जो मानो ज्ञान की खान है, जो पुराण पुरुष भगवान् की माता है, जिसकी कीर्ति तीनों भुवनों में (फैली हुई) है, जो (मानो) परब्रह्म रस का साँचा है, अथवा जो स्वयंप्रकाशी रत्नों की मंजूषा है और जिसने (क्षीरसमुद्र में उत्पन्न) लक्ष्मी के हृदय में विलास करनेवाले भगवान् विष्णु को अन्तः-करण में संचय कर (अर्थात् सँजोये) रक्खा है—अर्थात् उन भगवान् को हृदय में रक्खा, जो इन्दिरा (लक्ष्मी) के पति हैं, जो तीनों भुवनों के ईश्वर (अधिपति) हैं, ब्रह्मा और शचिपति इन्द्र जिनके आज्ञाकारी हैं और (अपर्णा अर्थात् पार्वती के पति) शिवजी जिनका ध्यान करते हैं। (अब) वे कौसल्या के उदर (गर्भ) में निवास कर रहे हैं। ७९-८१

अस्तु। श्रवण के शत्रु दशरथ कौसल्या के मन्दिर (प्रासाद) में

राहविले बाहेरी । द्वारमर्यादा धरोनियां । ८२ कौसल्या ज्ञानकळा परम । तीस अंतर्बाह्य व्यापला राम । चराचर अवघें परब्रह्म । न दिसे विषम कदाही । ८३ सांडोनि जागृति सुषुप्ति स्वप्न । नयनीं ल्याली ज्ञानांजन । चराचर अवघें निरंजन- । रूप दिसे कौसल्ये । ८४ दशरथ प्रवेशोनि अंतरीं । पाहे स्थूळ-ओसरीवरी । मग सूक्ष्मदेह-माजघरीं । न दिसे कदा कौसल्या । ८५ कारण-कोठडींत पाहे सादर । तंव तेथें अवघा अंधार । मग महाकारण उपरी थोर । त्यावरी नृप चढिन्नला । ८६ तेथेंही न दिसे कौसल्या सती । मग चकित पाहे नृपती । जिचे उदरीं सांठवला जगत्पती । तिची स्थिति कळेना । ८७ मग परात्पर-परसांत । प्रवेशता होय अजपाळ-सुत । तों बैसली समाधिस्थ । निर्विकल्पवृक्षातळीं । ८८ अंतरीं दृष्टि मुरडली । वरदळ स्वनाम विसरली । ब्रह्मानंदरूप

---

प्रवेश कर गये । दरवाजे की (सीमा) मर्यादा का ध्यान रखकर राजा ने सेवकों को बाहर ठहराया । ८२ कौसल्या तो सबसे बढ़कर ज्ञान-कला थी । उसे राम अन्तर्बाह्य (पूर्णतः) व्याप्त किये हुए हैं । (अतः उसके लिए) सब चेतन-अचेतन परब्रह्म ही है—उसे कुछ उससे भिन्न नहीं दिखायी देता है । ८३ जागृति, सुषुप्ति और स्वप्न नामक अवस्थाओं का त्याग कर वह आँखों में ज्ञान रूपी अंजन लगाये हुए है । (इसलिए) कौसल्या को सब चेतन-अचेतन निरंजन ब्रह्म स्वरूपी दिखायी देता है । ८४ अन्दर प्रवेश कर, दशरथ ने स्थूल (जड़) शरीर रूपी ओसारे में देखा । फिर सूक्ष्म देह रूपी मध्यघर (बीच के दालान) में देखा; फिर भी उन्हें कौसल्या कहीं भी नहीं दिखायी दी । ८५ (तदनन्तर) उन्होंने आदरपूर्वक पंचज्ञानेन्द्रियों (कारण) रूपी कोठी में देखा, तो वहाँ पूरा अँधेरा ही था । फिर महाकारण (सृष्टि का आद्य तत्त्व) तो सबसे बड़ा होता है; राजा उस पर चढ़ गये । ८६ (उन्हें) वहाँ भी सती कौसल्या नहीं दिखायी दी । फिर राजा चकित होकर देखने लगे । लेकिन जिसके उदर में जगत्पति भगवान् संचित (सँजोये) हैं, उस कौसल्या की स्थिति का पता नहीं चलता था । ८७ तदनन्तर अजराजा के पुत्र दशरथ परात्पर रूपी आँगन में प्रवेश कर गये, तो उन्हें दिखायी दिया कि वह (कौसल्या) निर्विकल्प (अवस्था) रूपी वृक्ष के तले समाधिस्थ बैठी हुई थी । ८८ उसकी दृष्टि अन्दर की ओर मुड़ी हुई थी । बाह्यवृत्ति तथा अपने नाम (तक) को वह भूल गयी । वह ब्रह्मानन्द स्वरूपी हो गयी—उसके लिए

जाहली । न चाले बोली द्वैताची । ८९ जैसा परम सतेज मित्र । तेथें डाग न लागे अणुमात्र । स्वरूपीं पहुडतां योगेश्वर । ज्ञान राहे ऐलीकडे । ९० कल्पांतविजूस मशक गिळी । पिपीलिका मेरु कक्षेसी घाली । धेनुवत्स मृगेंद्रा आकळी । एकादे वेळे घडेल हें । ९१ परी चतुरा विश्वरूपावरी । दृष्टांत न चाले निर्धारीं । श्रोत्रियांचे यज्ञशाळेभीतरी । कोठें महारी प्रवेशेल । ९२ वडवानळापुढें कर्पूर जाण । कीं जल-निधिमाजी लवण । तैसी बुद्धि आणि मन । स्वसुखावरी विरलीं । ९३ असो स्वानंदसागरांत । कौसल्या पूर्ण समाधिस्थ । जवळी उभा ठाकला दशरथ । पाहे तठस्थ उगाचि । ९४ कौसल्या स्वस्वरूपीं लीन । हे दशरथासी नेणवे खूण । म्हणे हे रुसली संपूर्ण । तरीच वचन न बोले । ९५ म्हणून राजचक्रचूडामणी । कौसल्येजवळ स्वयें बैसोनी । स्नेहें

---

द्वैत (भेदभाव) की भाषा नहीं चलती । ८९ जैसे सूर्य परम तेजस्वी है, उसमें अणु भर भी दाग नहीं लगता, वैसे ही जब महान् योगी आत्मस्वरूप में लीन हो (सो) जाए, तो द्वैतभाव का भान उसके परे रह जाता है । ९० प्रलयकाल की बिजली को मच्छड़ निगलता है, चींटी मेरु पर्वत को बगल में (ठूँस) डाल लेती है । गाय का बछड़ा सिंह को बाँध लेता है—ये बातें असम्भव हैं—फिर भी एकाध बार यह घटित हो जाए । परन्तु विश्व-स्वरूप को प्राप्त चतुर व्यक्ति पर कोई दृष्टान्त निश्चय ही नहीं चलता (काम आता-सार्थक, चरितार्थ होता) । श्रोत्रीय ब्राह्मण की यज्ञशाला के अन्दर अछूत स्त्री कहाँ (कैसे) प्रवेश कर पाएगी ? ९१-९२ समझो, जैसे वड़वानल के सामने (रखे हुए) कपूर की अथवा समुद्र में नमक की स्थिति हो जाती है, अर्थात् वह उसमें विलीन हो अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठता है, वैसे ही (कौसल्या की) बुद्धि और मन आत्मसुख में विलीन हो गया । ९३

अस्तु । कौसल्या आत्मानन्द रूपी सागर में पूर्णतः समाधिस्थ हो गयी (थी), तो दशरथ उसके पास खड़े रहे और तटस्थ हो चुपचाप देखते रहे । ९४ कौसल्या आत्मस्वरूप में लीन हो गयी है–दशरथ के ध्यान में यह लक्षण नहीं आया । उन्होंने कहा (सोचा)–'यह तो पूर्णतः रूठ गयी, इसीलिए तो यह कोई बात नहीं बोल रही है ।' ९५ इसलिए राजाओं के समूह में शिरोमणि की भाँति शोभा देनेवाले दशरथ कौसल्या के पास स्वयं बैठकर स्नेह पूर्वक उसे हृदय से लगाये हुए उसे समझाते

तीस हृदयीं धरूनी । समाधान करीतसे । ९६ तरी ते न उघडी नयन । नाहीं शरीराचें भान । मी स्त्रीपुरुषस्मरण । गेली विसरोन कौसल्या । ९७ अलंकार कैंचे एक सुवर्ण । तरंग लटिके एक जीवन । तैसें विश्व नाहीं एक रघुनन्दन । आनन्दघन विस्तारला । ९८ ऐसी कौसल्येची स्थिति जाहली । राजा म्हणे हे झडपली । कीं महद्भूतें पूर्ण घेतली । ओळखी मोडली इयेची । ९९ राजा म्हणे देवऋषि सिद्ध । इहीं दिधला आशीर्वाद । कीं पोटा येईल ब्रह्मानन्द । आदिपुरुष श्रीराम ।१०० ऐकतां रामनामस्मरण । कौसल्येनें उघड़िले नयन । तों जगदाभास संपूर्ण । रघुनन्दनरूप दिसे । १०१ राजा म्हणे हो नितंबिनी । कुरंगनेत्रे गजगामिनी । काय जे आवडी असेल मनीं । डोहळे पुरवीन सर्व ते । १०२ भ्रम टाकीं बोले वचन । तों कौसल्या बोले गर्जोन । मी जगदात्मा रघुनन्दन । कैंचें अज्ञान मजपासीं । १०३ स्थूळ लिंग आणि कारण । याहून

---

रहे । ९६ फिर भी वह आँखों को नहीं खोलती । उसे शरीर का भान नहीं है । वह स्त्री-पुरुष (भेद) का भान भी भूल गयी । ९७ आभूषण (अलग-अलग होने पर भी) अलग-अलग कैसे ? (वे जिनसे बनाये गये हैं वह) सोना तो एक ही होता है । (पानी पर अलग-अलग दिखायी देनेवाली) लहरें मिथ्या–आभास (मात्र) होती हैं–पानी तो एक ही होता है । वैसे ही (विश्व की विभिन्न वस्तुओं के अलग-अलग दिखायी देने पर भी) विश्व भिन्न नहीं है–एक आनन्द-घन रघुनन्दन राम ही (विश्व के रूप में) विस्तार को प्राप्त हो गये हैं । ९८ कौसल्या की ऐसी स्थिति हो गयी । राजा ने कहा (राजा को जान पड़ा) कि यह (किसी पिशाच द्वारा) झपेटी गयी (है) अथवा किसी महाभूत (पिशाच) ने इसे पूर्णतः वश में कर लिया (है) । इसलिए (ही तो) इसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो गयी । ९९ राजा ने कहा–'देवों, ऋषियों (और) सिद्धों ने इसे आशीर्वाद दिया कि इसके पेट (गर्भ) में ब्रह्मानन्द आदिपुरुष श्रीराम आएँगे ।' १०० रामनाम का स्मरण सुनते ही कौसल्या ने आँखें खोलीं, तो उसे समूची बाह्य सृष्टि रघुनन्दन राम-स्वरूप दिखायी दी । १०१ राजा बोले–'हे नितम्बिनी मृगनयनी, हे गजगामिनी, तुम्हारे मन में जो जो इच्छाएँ हों, वे सब दोहद मैं पूर्ण करूँगा । १०२ (यह) भ्रम छोड़ दो, (कोई) बात तो कहो ।' तब कौसल्या गरजकर बोली—'मैं जगत् का आत्मा राम हूँ । मेरे पास अज्ञान कैसे ? १०३ स्थूल (जड़) देह, लिंग (सूक्ष्म) देह और पंचेन्द्रियाँ–

माझें रूप भिन्न । महाकारण हें निरसून । आत्माराम वेगळा मी । १०४ द्वैत अद्वैत महाद्वैत । याहून वेगळा मी अतीत। सच्चिदानन्द शब्द जेथ । खुंटोनियां राहिला । ५ जीव शिव हे दोन्ही पक्ष । ध्याता ध्यान लय लक्ष । यांवेगळा मी सर्वसाक्ष। अचिंत्य अलक्ष श्रीराम । ६ राजा म्हणे कौसल्ये ऐकें । मी कोण आहें मज ओळखें । डोहळे पुसावया महासुखें । तुजजवळी बैसलों । ७ येरी म्हणे ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान । हें सर्व गेलें आटोन । नाहीं स्त्रीपुरुषनपुंसकपण । मी-तूंपण तेथें कैंचें । ८ नृप म्हणे हे महद्भूतें घेतली । ओळखी सर्व मोडली । मग पुसे गोष्ट मागली । धाकुटपणींची तियेतें । ९ राजा म्हणे शशांकवदने । गुणसरिते पद्मनयने । वऱ्हाड बुडवोनि तुज रावणें । नेलें होतें आठवतें कीं । ११० शत्रूचें नाम ऐकतां कर्णीं । हांक फोडिली भुजा पिटोनी । म्हणे धनुष्यबाण दे आणूनी । टाकीन छेदोनि दाही शिरें । १११ ताटिका मारूनियां आधीं । ऋषियाग

---

इनसे मेरा रूप भिन्न है । महाकारण (मूलतत्त्व) से दूर (अलग) हो मैं आत्माराम (नितान्त) भिन्न हूँ । १०४ द्वैत-अद्वैत, महाद्वैत—मैं (इन सबसे) भिन्न (और) परे हूँ, जहाँ सच्चिदानन्द शब्द भी ठप (अर्थहीन) हो चुका है । ५ जीव और शिव—ये दो पक्ष हैं । ध्याता (ध्यान करनेवाला), ध्यान, लय, लक्ष्य–इनसे भिन्न मैं सर्वसाक्षी, अचिन्त्य, अलक्ष्य श्रीराम हूँ ।' ६ राजा ने कहा–'हे कौसल्या, सुनो । मुझे पहचानो कि मैं कौन हूँ । तुमसे दोहद पूछने के लिए अति सुखपूर्वक तुम्हारे निकट बैठा (हूँ) ।' ७ (इस पर) दूसरी अर्थात् कौसल्या ने कहा–'(मेरे पास) ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान–यह सब समाप्त हो चुका है । (मेरे लिए) स्त्रीत्व, पुरुषत्व, नपुंसकत्व (का भान) नहीं है, तो वहाँ (मेरे पास) मैं–तू का भाव कैसे ?' ७ तो राजा ने कहा—'इसे तो किसी महापिशाच ने वश में कर लिया ! पहचानने की शक्ति सब नष्ट हो गयी ।' तब उन्होंने उससे उसके बचपन की–पिछली बात पूछी । ९ राजा ने कहा—'हे चन्द्रमुखी, गुणसरिता, कमलनयना ! क्या तुम्हें याद है कि बारात को डुबोकर रावण तुम्हें ले गया था ?' ११० कानों से शत्रु का नाम सुनते ही बाहुओं को ठोंककर उसने ज़ोर से पुकारा–गर्जन किया और कहा—'धनुष-बाण ला दो । (उसके) दसों मस्तक तोड़ डालूँगा । ११ पहले ताड़का को मार डालकर ऋषियों के यज्ञ सफलता को प्राप्त कराऊँगा । युद्ध में महान् राक्षसों का वध करके मैं गाधि के पुत्र विश्वामित्र को सन्तुष्ट करूँगा । ११२

चारि भाइर माजे राम सब्बंगुणे अनुपाम नाहि आन रामर समान।
समस्तरे अग्रगणि रघुबंश-शिरोमणि भैला राम पुरुष प्रधान॥
अस्त्र शस्त्र शास्त्र यत चौषष्ठि कलार तत्त्व यत विद्या आछे संसारत।
क्षेपण जोरण बाण मंत्र पढ़ि संहारण समस्तते भैलन्त पार्गत॥ १५
राघवर यश जत प्रकाशिल जगतत जेन पूर्णचन्द्र प्रज्वलित।
शुनन्ता लोकर माने येन अमृतर पाने अधिक सन्तोष करे चित॥
दशरथ नरेश्वर गुण देखि राघवर मने जेन अमृत बरिषे।
कौशल्यार मन प्राण रामते मगन भैल सुधा जेन पिये अहर्निशे॥ १६
रामर प्रसन्न मुख देखन्ते मिलय सुख अयोध्यार यत नारी नर।
रामकेसे करे ध्यान रामते मजिल प्राण भैल लोक अधीन रामर॥
सब्बं पाप विमोचन राघवर गुणगण कहे जुमाजुमि सब्बंजने।
निर्म्मल चरित्रचय केवल अमृतमय शुनि सबे पिये सब्बंक्षणे॥७१७

## दुलड़ी

रामर समान नाहि सुपुरुष इतिनि लोकर माजे।
दुर्ब्बादल श्याम सुन्दर शरीर देखिया मदनो लाजे॥
गजेन्द्र गमन हास्य निरीक्षण समस्तरे हरे मन।
पूर्णचन्द्र रुचि बदन देखिते स्तम्भि रहे सर्ब्बजन॥७१८

सभी लोगों में अग्रगण्य बन रघुवंशशिरोमणि राम पुरुष-प्रधान बन गये। अस्त्र-शस्त्र-सम्बन्धित सभी शास्त्रों, चौसठ कलाओं, और संसार में जितनी विद्याएँ हैं, सभी में वे निष्णात बन गये। बाण का डोरी पर रख कर चढ़ाना, फेंकना और मंत्र पढ़कर बाण का संहार करने (लौटालने) की कला सभी में वे पारंगत बन गये॥ १५॥ राम का पूर्ण यश संसार भर में यों फैला मानों पूर्णचन्द्र की चन्द्रिका हो। सुनकर लोगों के मन में इस प्रकार सन्तोष होता मानों वे अमृत का पान कर रहे हों। राजा दशरथ के मन में राम के गुण देखकर मानों अमृत बरसने लगा। कौशल्या का हृदय राम में इस प्रकार मग्न हो गया, मानों रात-दिन अमृत का सेवन कर रही हों॥ १६॥ अयोध्या के सारे नर-नारी राम का मुख देखकर सुख पाते हैं। वे सदा राम ही का ध्यान करते थे, राम ही में उनका मन रम गया, और वे लोग राम के अधीन हो गये। लोगों के समूह सर्व पापों से मुक्त कर देने वाले राम का गुण गाने लगे। उनका निर्मल चरित्र केवल अमृतमय है, सभी लोग सदा श्रवणों (कानों) के द्वारा उसे पीते रहते हैं॥ १७॥

## दोलड़ी

इन तीनों लोकों में राम जैसा सुदर्शन पुरुष कोई नहीं। दूब के रंग जैसा उनका साँवला सुन्दर शरीर है जिसे देखकर मदन लज्जित हो जाता है। उनकी गज जैसी चाल और मुस्करा कर देखना सभी स्तर के लोगों का मन हर लेते हैं। उनका मुखड़ा सुन्दर पूर्णचन्द्र जैसा है, जिसे देखकर सभी लोग स्तम्भित रह जाते हैं॥ १८॥ गुण से रूप, रूप से गुण को अन्योन्याश्रयी (एक दूसरे के सहारे निर्भर) बल मिलता है। रूप और गुण दोनों से लोग मुग्ध होकर कौतूहल से देखते रह जाते

गुणहन्ते रूप रूप हन्ते गुण दुयो अन्यो अन्ये बले।
रूप गुणे लोक दुयो बिमोहित चाइ थाके कौतूहले ॥
येन दिनमणि प्रकाशे धरणी ढाकिल रामर गुणे।
पाप हय क्षय धर्म्मर उदय जानिया जगते शुने ॥ १९
क्षमा दाया धृति सत्य शौच नीति समस्त गुणे सम्पन्न।
धर्म्ममय मन सदाय प्रसन्न सज्जन जन रंजन ॥
दुर्ज्जनर यम बिपुल बिक्रम दुर्ज्जय दक्ष शरीर।
बज्रर समान सुदृढ़ सन्धान धनुर्द्धर महाबीर ॥ २०
अनादि अनन्त नाहि यार अन्त यिटो देवतार देव।
ब्रह्मा आदि देवे सदाय करन्त याहार चरणे सेव ॥
तेन्ते भगवन्त देव महेश्वर भैल आसि अवतार।
समस्ते लोकर कुशल कारणे करिला गुण प्रचार ॥ २१
सकल निगमे नपावन्त अन्त बखानि यार महिमा।
आन कोन जने कहि करिबेक रामर गुणर सीमा ॥
राम हेन नाम शुनन्ते मनत अमृत येन बरिषे।
महा महाजने सदा राम राम उच्चरे मुखे हरिषे ॥ २२
राम हेन इटो नामर मधुर जानि कोन महाजने।
राम राम बुलि फुरन्त सदाय मुकुतिको हेलि मने ॥
रामर नामर माजत सदाय समस्त धर्म्मर मेला।
महा महा पापी तरे राम बुलि संसारक मारि ठेला ॥ २३
हेनय रामर महिमा कहिते शकति आछे काहार।
मूरुख माधव दासे बिरचिल आदिकांड कथा सार ॥
शुना सभासद रामायण पद निन्दा नुबुलिबा मोक।
रामर चरित्र करियोक पान पद येन तेन हौक ॥ २४

हैं। सारी धरती जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से भर जाती है उसी प्रकार संसार राम के गुणों से ढक गया। पाप का क्षय होने लगा और धर्म का उदय होने लगा, यह सारे संसार को विदित हो गया ॥ १९ ॥ क्षमा, दया, धैर्य, सत्यनिष्ठा और पवित्र नीतिपरायणता आदि सारे गुणों से सम्पन्न उनका मन धर्म से परिपूर्ण है और वे सदा ही प्रसन्न हैं। वे सज्जनों के हृदय-रंजन हैं। वे दुष्टों के लिए यम के समान हैं, उनका निशाना वज्र के समान अमोघ (अचूक) है, और वे महावीर धनुर्धर हैं ॥ २० ॥ उनका कोई अन्त नहीं, वे अनादि और अनन्त हैं, वे सारे देवताओं के देवता हैं। ब्रह्मा आदि सारे देवता जिनके चरणों की सदा सेवा करते रहते हैं उन्हीं भगवान् देव महेश्वर (विष्णु) ने आकर अवतार धारण किया है। समस्त संसार के कुशल के हेतु गुणों का प्रचार किया है ॥ २१ ॥ सारा वेद-शास्त्र जिनकी महिमा को अन्त तक नहीं बखान सकता, उन राम के गुणों की सीमा दूसरा कौन सा व्यक्ति है जो कूत सके। राम का नाम ऐसा है जिसे सुनते ही मन में अमृत- बरसने लगता है। बड़े-बड़े महान् लोग हर्ष से मुँह से राम राम उच्चारते हैं ॥ २२ ॥ राम जैसा मधुर दूसरा कोई नाम किसी महान् जन को क्या मालूम ? राम राम कहते हुए वे मुक्ति की भी परवाह न कर फिरते रहते हैं। राम नाम में सदा सारे धर्मों का मिलन है, बड़े-बड़े पापी भी राम का नाम लेकर संसार को दूर धकेल कर तर जाते हैं ॥ २३ ॥ ऐसे राम की महिमा बखान सके ऐसी शक्ति किसमें है। मूर्ख माधवदास ने आदिकांड

रामर चरित्र बिरचि आछन्त महा महा कबि जने।
तासम्बाक देखि पद करिबाक स्वाद भैल मोर मने ॥
प्रमत्त हस्तीक सिंहे बिमर्द्दय आपोनार बले रागि।
ताक देखि येन क्षुद्र मूषकर श्रद्धा होवे ताक लागि ॥ २५
सिंहर मूषर यतेक अन्तर मोरो सेहि पटन्तर।
इटो मोर दोष क्षमिबे उचित तुमि सब महन्तर ॥
अधम जनेसे जानिबा निश्चय विचारय दोष गुण।
दोष परिहरि गुणक लवन्त उत्तम यिटो निपुण ॥ २६
रामर चरित्र श्रवणेसे जाना समस्त धर्म्मर सार।
हेला परिहरि शुना कर्णभरि तेवेसे पाइबा निस्तार ॥
रामेसे परम धर्म्म अनुपाम सर्ब्बोत्तम सर्ब्बसार।
रामेसे सुहृद सोदर बान्धव तेहेसे जगत उद्धार ॥ २७
निज आत्मा देव प्रभु महेश्वर सर्ब्बानन्द निरंजन।
जगतकारण कौशल्यानन्दन हुयाछे बधी रावण ॥
इतिनि भुवने रामर चरण बिने नाहि आन गति।
महाभागवत पुराण भारत सबारो एहि जुगुति ॥ २८
बेद शास्त्र जत बिचारि चाहिबा राम बिने नाहि आन।
केतिक्षण जाना परय शरीर इटो येइ सेइ थान ॥
कलिर प्रभावे स्वभाव लोकर भै गैल मलिन मति।
आन धर्म्मे कर्म्मे मलिन जनर किमते साधिब गति ॥
परम मलिन जनो पावे गति सुमरिले हरिनाम।
जानिया समस्त समज्यार लोक डाकि बोला राम राम ॥ २९

---

का कथा-सार प्रस्तुत किया। हे सभा के सज्जनो ! रामायण के पद सुनकर मेरी निन्दा मत करना। पद चाहे कैसा भी क्यों न हो, राम का चरित्र सेवन करना ॥ २४ ॥ राम के चरित्र की रचना बड़े बड़े कवि करते रहे हैं। उन्हीं सबको देखकर मेरे मन में भी पद-रचना करने की इच्छा हुई। सिंह क्रुद्ध होकर अपने बल से मदमत्त हाथी का मर्दन कर देता है। यह देखकर छोटे मूस (चूहे) को भी उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न हो जाता है ॥ २५ ॥ सिंह और चूहे में जितना अन्तर है वही मुझमें और उनमें है। तुम सब महान् हो, मेरे इस दोष को क्षमा कर दोगे। निश्चय रूप से यह जानकर कि अधम जन है उसका गुण और दोष विचारना। जो उत्तम और निपुण जन हों वे दोष को त्याग कर गुण को ग्रहण करें ॥ २६ ॥ राम का चरित्र कानों से सुन लेना ही सारे धर्म का सार है। उपेक्षा त्याग कर कान भर कर सुन लो, तभी निस्तार मिलेगा। राम ही सर्वोत्तम सर्वसार अनुपम परम धर्म हैं। राम ही परम सुहृद, मित्र व बन्धु हैं। उन्हीं के द्वारा संसार का उद्धार होगा ॥ २७ ॥ सर्वानन्द निरंजन, निजात्मा, देव, प्रभु, महेश्वर (विष्णु) संसार के हित में रावण-वध के लिए स्वयं कौशल्यानन्दन बन गये हैं। इन तीनों लोकों में राम के चरणों के सिवा अन्य कोई गति नहीं। महाभागवत, पुराण, महाभारत आदि में भी यही युक्ति बतलायी है ॥ २८ ॥ सारे वेद शास्त्रों को विचार कर देखो कि राम के बिना कोई दूसरा नहीं। यह जान लो कि किसी न किसी समय शरीर का पतन होगा और वह गिरने का स्थान यही है। कलियुग के प्रभाव से लोगों का स्वभाव बड़ा ही मलिन हो गया है। अन्य धर्म-कर्म से मलिन जन है वह भी हरि का नाम

## जनकर घरत सीतारूपे लक्ष्मीर जन्म

### पद

जगतरे हित चिन्ति हुया चारि जन * दशरथ घरे उपजिला नारायण
जेतिक्षणे रामरूपे उपजिला हरि * त्रिजगत सुखी भैल सेहि दिन धरि ७३०
मिलिल हरिष आति महन्तर मने * पद्मर प्रकाश येन सूर्य दरशने
परिल निजम यत दुर्ज्जन सकल * आदित्यर तापे येन जावे उतपल ३१
अधर्म्म बिनाशि भैल धर्म्मर उदय * सूर्य्यर प्रकाश येन गुचि तमोमय
रावण बधिते हरि भैल अवतार * देखिया कौतुक बर भैल देवतार ३२
पाचे आसि ब्रह्मार आदेशे देवगण * अंशे सबे भैलन्त बानरत उतपन
परम दुर्ज्जय बले बीर्य्ये आति चार * पर्ब्बतक उपारिया करन्त प्रहार ३३
ब्रह्मा आदि करिया देवता निरन्तर * कतोहो भालुक भैला बानर विस्तर
देवतो अधिक बले तेज पराक्रम * संसारतो नाहि बीर बानरक सम ३४
बिपरीत लीला केने देखा ईश्वरर * देवता सबको आनि करिला बानर
विषयत आशा जार नुगुचे सर्ब्बथा * सिजनर नुहि जाना कोननो अवस्था ३५
जानिया विषय सुख यत्ने दूर करि * एकान्त शरणे निते भजियोक हरि
ईश्वरर भकतिसे जीवर कुशल * आत अनन्तरे कथा शुनियो सकल ३६

---

स्मरण कर ले तो उसका बेड़ा पार लग जायगा। समाज के लोगो, यह सब जान कर राम का नाम बोलो ॥ ७२९ ॥

## जनक के घर में सीता के रूप में लक्ष्मी का जन्म

### पद

संसार की कल्याण-कामना करते हुए नारायण चार रूप धारण कर दशरथ के घर में उत्पन्न हुए। जिस समय से हरि राम का रूप धारण कर उत्पन्न हुए उसी दिन से तीनों लोक सुखी हो गये ॥ ३० ॥ साधु-सन्तों के मन इस प्रकार हर्षित हो गये जिस प्रकार सूर्य के दर्शन से कमल खिल उठते हैं। सारे दुष्ट इस प्रकार निस्तब्ध हो गये जिस प्रकार सूर्य के उत्ताप से कुमुद मुरझा जाते हैं ॥ ३१ ॥ अधर्म का विनाश कर इस प्रकार धर्म का उदय हुआ मानों अन्धकार को दूर कर सूर्य का प्रकाश फैल गया। हरि ने रावण का वध करने के लिए अवतार लिया है, यह देखकर देवताओं को बड़ा कौतूहल हुआ ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा के आदेश से सारे देवता वानरों में आकर उत्पन्न हो गये। शक्ति में दुर्जय और वीर्य में अति प्रबल ये पर्वतों को उखाड़-उखाड़ कर प्रहार करने लगे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा से लेकर जाने कितने ही देवता कितने ही भालू और वानर बन गये। वे तेज, पराक्रम और बल में देवताओं से अधिक हुए। उस समय संसार में वानरों से बढ़कर अन्य कोई वीर नहीं थे ॥ ३४ ॥ ईश्वर की यह अद्‌भुत लीला देखो, सारे देवताओं को लाकर वानर बना दिया। जिसकी आशा विषय-सम्पदा से सम्पूर्ण रूप से अघाती नहीं उस व्यक्ति को किसी भी अवस्था का ज्ञान नहीं होता ॥ ३५ ॥ यह जानने के बाद सांसारिक सारे सुखों का यत्न से परिहार कर एकान्त शरण लेने के लिए हरि का भजन करो। ईश्वर की भक्ति से ही जीव का कल्याण है। इसके अनन्तर सारी बातें सुनना ॥ ३६ ॥ राम

रामर जन्मर कथा अमृत समान * मति अनुसारे बिरचिलो किछुमान
सतीर जन्मर कथा कहो आतपरे * जिमते जन्मिला देवी जनकर घरे ३७
दशरथ घरे उपजिला भगवन्त * परम ईश्बरी लक्ष्मी देवी देखिलन्त
आपोनार रूप आति करिया सुवेश * पर्ब्बते आछन्त बसि मुक्त करि केश ३८
सेहि बेला रथे चरि फुरे लंकेश्वर * गोसानीक देखिलेक पर्ब्बत उपर
त्रैलोक्यमोहन रूप देखि चमत्कार * भैल आति मोहित रावण दुराचार ३९
तारे बध चिन्ति मने आछन्त गोसानी * सिटो पापी निशाचरे ताहाक न जानि
रथत तुलिल आनि ताक बले धरि * लक्ष्मी मावे तेखने जानिला ध्यान करि ४०
कोपे शापि रावणक दिलन्त उत्तर * मोक निचिनिस तइ शुनरे बर्ब्बर
जन्मिबाक जाओं तोर बधर कारणे * उपजिला हरि तोक मारिबाक मने ४१
भैल अन्तर्द्धान एहि बुलि रावणक * शुनि रावणर मने लागिल चमक
महाभये भैल आति कम्पित स्वभाव * पाचे आपोनार जन्म चिन्ति लक्ष्मी माव ४२
सागरत जाम्प देवी दिला बिद्यमान * शतेक योजन तथा भैल द्वीपखान
पाचे बसुमती गैया लक्ष्मीक सादरि * तथाते रहिला तांक उदरत धरि ४३
रहिलन्त लक्ष्मी पृथिवीर उदरत * करन्त प्रकाश रक्तपिंड येनमत
ताहार निकटे आछे मिथिला नगर * आछे सेहि नगरे जनक नरेश्वर ४४
महातपशील राजा राजऋषिबर * पुत्रवते पाले प्रजा धर्म्मत तत्पर
यज्ञ करिबाक मने जनक नृपति * करिला जिज्ञासा पाचे स्थान महामति ४५

---

के जन्म की कथा अमृत के समान है। अपनी ज्ञान-बुद्धि के अनुसार जो कुछ भी बन पड़ा वह कथा गाई। इसके अनन्तर सती (लक्ष्मी देवी) के जन्म की कथा कहता हूँ कि किस प्रकार से देवी ने जनक के घर में जन्म लिया ॥ ३७ ॥ दशरथ के घर में भगवन्त ने जन्म लिया यह परम ईश्वरी लक्ष्मीदेवी ने देखा। अपने रूप को अति सुन्दर बना कर बाल खोलकर देवी पर्वत पर बैठीं ॥ ३८ ॥ उसी समय रथ पर लंकेश्वर उस ओर से जा रहा था—देवी को उसने पर्वत के ऊपर देखा। अति चमत्कारी त्रैलोक्यमोहन रूप देखकर दुराचारी रावण बड़ा मुग्ध हो गया ॥ ३९ ॥ देवी मन ही मन उसका वध करने का विचार किये हुई हैं लेकिन वह पापी निशाचर इस बात को नहीं जानता है। उनको बलप्रयोग द्वारा उसने रथ पर उठा लिया। लक्ष्मी माता ने तभी मनन के द्वारा जान लिया ॥ ४० ॥ कुपित होकर शाप देती हुई उन्होंने रावण को उत्तर दिया—अरे बर्बर! तू मुझको पहचानता नहीं। तेरे वध के हेतु मैं जन्म लेने जा रही हूँ। तुझे मारने का निश्चय कर हरि ने जन्म ले लिया है ॥ ४१ ॥ रावण से इतना कहकर देवी दृष्टि से ओझल हो गईं, तो रावण मन ही मन चौंका। महाभय से वह काँपने लगा। इसके अनन्तर लक्ष्मीमाता के जन्म के सम्बन्ध में वर्णन करते हैं ॥ ४२ ॥ देवी ने सागर में छलांग मार ली। उस स्थान पर सौ योजन का एक टापू बन गया। इसके अनन्तर वसुमती (धरती) ने जाकर लक्ष्मी को आदर से अपने उदर में रख लिया ॥ ४३ ॥ लक्ष्मी धरती माता के पेट में रह गईं। वह यों आभासित होने लगीं मानों रक्त का पिंड हों। वहीं निकट मिथिला नगर था जिसमें नरेश्वर जनक रहते थे ॥ ४४ ॥ वह राजा महा-तपस्वी और राजर्षि थे। वे अपनी प्रजा को पुत्रवत् पालते थे। राजा जनक को यज्ञ करने की इच्छा हुई तो उन्होंने स्थान के बारे में पूछा ॥ ४५ ॥ भूमि को बारह साल तक खेती के लिए जोतना पड़ता है तभी वह स्थान यज्ञ के लिए पवित्र बनता

चाषिबाक लागे भूमि द्वादश बत्सर * तेवेते पवित्र स्थान होवय यज्ञर
गर्भवती हुआ मही आछय यथात * अनेक लांगल निया जुरिल तथात ४६
उठिलेक डिम्बगोट बाजिया लांगले * रक्तमय डिम्ब सूर्य्यगोट येन ज्वले
हालोवा सकले पाचे जुगुति करिया * जनकर आगे डिम्बगोट दिल निया ४७
परम सुन्दर डिमा देखि महामानी * भांगि चाहे भितरत आछे कन्याखानि
उपजिया कान्दे आति आर्त्तराव करि * भुवनदुर्ल्लभ कन्या परम सुन्दरी ४८
जनक नृपति मने हरषित भैला * महा सुलक्षणा कन्या कोले तुलि लैला
अन्तःपुरे गैला राजा हुया रंगमन * देखिला कन्याक पाचे महादइगण ४९
स्वामीक चाहिया पाचे हासिया बुलिला * काहार कन्याक प्रभु काढ़िया आनिला
इटो सुलक्षणी कन्या बर रूपवती * आति अदभुत लक्ष्मी जेन मूर्त्तिमती ५०
राजा बोले यज्ञभूमे पालो कन्याखानि * मुख्य महादैक दिया बुलिलन्त बाणी
तोमाके दिलोहो तुलिबाहा करि जतन * भैलन्त हरिष देवी पाया कन्यारत्न ५१
परम दरिद्रे जेन पाइला नवनिधि * कराइलन्त संस्कार जेन बेदबिधि
नाम थैबे बिचार करिला मुनि यत * उपजिला कन्या लांगलर सीरलत ५२
एतेकेसे तान सबे सीता नाम थैला * एहिमते सीता गोसानीर जन्म भैला
जनक नृपति आति तुलिला यतने * ताहान दुहिता सीता बोले सर्ब्बजने ५३
सीता नाम धरि लक्ष्मी जगत जननी * येन चन्द्रकला बाढ़ि जान्त सुवदनी
एकचित्त मने सदा बिष्णुक धियान्त * हरिक निचिन्ति सती एकोके नखान्त ५४

है। जहाँ धरती-माता गर्भवती बनी पड़ी थी वहीं बहुत से हल लेकर लोग जुट गये ॥ ४६ ॥ हल से टकराकर एक अंडा सा निकला। लहू के रंग का वह अंडा यों प्रकाशमान हो उठा मानो सूर्य हो। जितने हलवाहे थे उन्होंने आपस में सलाह कर अंडा लाकर जनक के सम्मुख रख दिया ॥ ४७ ॥ महामान्यवर ने सुन्दर अंडा देखकर उसको तोड़ा तो देखा भीतर एक कन्या है। उत्पन्न होने के साथ ही साथ वह जोर से चिल्ला कर रोने लगी। यह कन्या संसार में दुर्लभा परमासुन्दरी है ॥ ४८ ॥ राजा जनक मन ही मन बड़े हर्षमग्न हुए। सुलक्षणा कन्या को उन्होंने गोद में उठा लिया। राजा आनन्दमग्न होकर रनिवास में गये। इसके अनन्तर महादेवियों ने कन्या को देखा ॥ ४९ ॥ पति की ओर देख हँसकर उन्होंने कहा, हे प्रभु, यह किसकी कन्या तुम छीन कर ले आए। यह तो बड़े अच्छे लक्षणों से युक्त रूपवती कन्या है, मानों मूर्त्तिमती लक्ष्मी हो ॥ ५० ॥ मुख्य पटरानी को देकर राजा ने कहा, यज्ञभूमि में इस कन्या का पालन-पोषण करो। तुमको दे रहा हूँ कि तुम जतन से इसको पाल-पोस कर बड़ा करो। कन्यारत्न पाकर देवी हर्षमग्न हो गई ॥ ५१ ॥ घोर दरिद्र को मानों नौ निधियाँ मिल गईं। वेदोक्त रीति के अनुसार सारा संस्कार मनाया गया। मुनियों ने निश्चय किया कि कन्या का नामकरण किया जाय। इस कन्या ने हल की नोक के सिरे पर जन्म लिया है ॥ ५२ ॥ इस कारण उन सबों ने उसका सीता नाम रखा। इस प्रकार से सीता देवी का जन्म हुआ। राजा जनक ने उसे यत्न से उठा लिया। सीता उनकी बेटी है यही सब लोग कहने लगे ॥ ५३ ॥ जगज्जननी लक्ष्मी सीता का नाम धारण कर चन्द्रमा की कला के समान उत्तम मुखड़े वाली (कन्या) के रूप में दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। एकचित्त होकर वह सदा विष्णु का ध्यान किया करती। बिना हरि का स्मरण किये वह एकबार भी खाना नहीं खाती ॥ ५४ ॥ सब लोगों ने जब देखा कि कन्या परम वैष्णवी है तो मन ही मन

परम बैष्णवी कन्या देखि सर्ब्बजने * जन्मिल लक्ष्मीर अंश जानिलेक मने
सीतार चरित्र यत एतिक्षणे थओं * सम्प्रतिके प्रभु राघवर कथा कओं७५५

## गुह चंडालर बृत्तान्त

पुष्या नक्षत्रत दशरथ महाबीर * चारि पुत्र समे गैला भागीरथी तीर
स्नान दान तर्पण करिया नृपवर * देवऋषि पितृक तर्पिल निरन्तर७५६
शुनियोक आतपरे अद्भुत कथन * सैन्ये समे भैला तैत जेन महारण
परम दर्पिष्ठ हृष्ट पुष्ट कलेवर * सेहि समयते मिलिलेक आथान्तर ५७
पूर्ब्बत ब्राह्मण आसि अधर्म्म करिल * सेहि पापे चंडाल योनित उपजिल
गुह नामे भैल सिटो राजा चंडालर * सेहि समयत लैया सेना निरन्तर ५८
दशरथ नृपतिक नगणि मनत * चंडाले करिल स्नान गंगार जलत
दशरथ देखे अहम्मम चंडालर * धरि आनिबाक आज्ञा दिला नृपबर ५९
शुनि गुह नृपतिर क्रोध बर भैल * अनेक चंडाल समे जुजिबाक लैल
दशरथ नृपतिर कटक अपार * दुयो सेना अन्यो अन्ये करे धर-मार ६०
लागिल समर भागीरथी तीर जुरि * उभय कटके लगाइलेक हुराहुरि
अनेक कटके बेढ़ि करे हुलस्थूल * परम दुर्घोर रण मिलिल तुमुल ६१
मारय खांडार कोब बारुक जंकारि * बारु समे शाले केहो जने शर मारि
खरतर अस्त्र धरि दोहाते प्रहारे * लवरन्ते गैया कतो हाते खोंचा मारे ६२

---

उन्होंने जान लिया कि लक्ष्मी के अंश ने जन्म लिया है। सीता की कथा अबतक यहीं पर रहे, अब प्रभु राम की कथा कहता हूँ ॥ ५५ ॥

## गुह चंडाल की कथा

महावीर दशरथ अपने चारों पुत्रों के साथ पुष्य नक्षत्र में भागीरथी गंगा के किनारे गये। नृपवर ने स्नान दान तर्पण कर देवता ऋषि और पितरों का तर्पण किया ॥ ५६ ॥ इसके बाद अद्भुत कथा सुनो। सैन्यों के साथ वहाँ बड़ा युद्ध हुआ। परम दर्पित, तगड़ा बलवान शरीर वाला गुह उसी समय अचानक आ धमका ॥ ५७ ॥ पहले ब्राह्मण था किन्तु अधर्म करने के कारण उसने चंडाल योनि में जन्म लिया। वह गुह नाम से चंडालों का राजा बना। उसी समय वह अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँचा ॥ ५८ ॥ राजा दशरथ की कोई परवाह न कर गंगा के जल में चंडाल ने स्नान किया। राजा दशरथ ने चंडाल का अहंकार देखा तो उन्होंने उसको पकड़ लाने का आदेश दिया ॥ ५९ ॥ सुनकर राजा गुह को बड़ा क्रोध आया। अनेक चंडालों के साथ वह युद्ध करने को तैयार हो गया। राजा दशरथ की सेना भी असंख्य थी। दोनों सेनाएँ एक दूसरे को मारने-गिराने लगीं ॥ ६० ॥ गंगा के तट पर युद्ध शुरू हो गया। दोनों सेनाएँ एक दूसरे से गुँथ गयीं। सारे सैनिक मिलकर हल्ला-गुल्ला मचाने लगे। भीषण युद्ध प्रबल रूप से शुरू हो गया ॥ ६१ ॥ प्रमत्त होकर कोई किसी पर खड्ग से प्रहार कर रहा है तो कोई लकड़ी के बने बरछे से तो कोई बाण से मार रहा है। भीषण अस्त्र लेकर दोनों एक दूसरे को मारते। लड़ने को जाकर कोई तो हाथों से ही कोंच देता ॥ ६२ ॥ मदमत्त चंडालों का कलरव उठा। ढाल आदि लेकर वे जूझने के लिए आगे बढ़े।

मदमत्त चंडालर उथलिल रोल * आगुवान हुया युजे लैया ढाल खोल
चारिभिते शबद उठिल भयंकर * परम चंचल चित्त भैल चंडालर ६३
मद्य लागि आछय चेतन नाहि गावे * हातत चौबरी धरि हुलाहुलि धावे
भैल आउल जाउल बाउल जेन खेदि आसे * अरे तइ कोन बुलि फुरे चारि पाशे ६४
नाहि अस्त्र शस्त्र कतो प्रहारय दलि * दशरथे देखिया हासन्त खलखलि
आपोनार कटकक दिलन्त निशान * गुह नृपतिक जीवन्तते धरि आन ६५
शुनि नृपतिर आति कटक प्रखर * युजिबार सन्धि आति जानय बिस्तर
चारिभिति बेढ़िया अनेक सेनागणे * गुह चंडालक बन्दी करिला तेखने ६६
पाचे पात्रे निया नृपतिर आगे दिल * रामक देखिया पूर्ब्बबृत्तान्त स्मरिल
रामर चरणे गैया करि नमस्कार * रामत कहन्त गुहे कथा आपोनार ६७
शुनियोक राम कहो तजु चरणत * आछिल ब्राह्मण मइ पूर्ब्ब जनमत
जि दोषे चंडाल भैलो शुना स्वरुपत * भगीरथ महाराजा तोमार वंशत ६८
ब्रह्माक आराधि राजा महाधर्म्मशील * ब्रह्मलोक हन्ते गंगा नमाया आनिल
बिष्णुपदरज मिश्र तुलसी सहित * भैल सर्ब्बोत्तम गंगा जगते विदित ६९
नाहि त्रिभुवने तीर्थ गंगार समान * यत महाजन सबे करिलन्त स्नान
ब्राह्मण बुलिया गर्ब्ब करिलो मनत * गंगा आदि तीर्थ आछे मोर शरीरत ७०
नकरिलो स्नान मइ गंगार जलत * शपिलन्त गंगा क्रोध करिया मनत
मोक स्नान नकरिलि ब्राह्मण गर्ब्बत * एहि पापे तोर जन्म हैब चंडालत ७१
गुह नामे हैबि तइ राजा चंडालर * एहि बुलि पाचे सीमा दिलन्त शापर
थाकय तोहोर मन येवे मोक प्रति * जन्मे जन्मे मोत तेवे करिबि भकति ७२

---

चारों ओर भयंकर शब्द होने लगा। चंडालों का चित्त बड़ा चंचल हो उठा ॥ ६३ ॥ मदिरा पीने के कारण उनके शरीर में कोई चेतना नहीं थी। वे हाथ में छड़ी थामे इधर-उधर दौड़ने लगे। वे बावले से होकर दौड़-दौड़ कर आने लगे और "तू कौन है" कहकर इर्दगिर्द मँडराने लगे ॥ ६४ ॥ उनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं, इस पर भी वह पटक-पटक के मार रहे हैं। दशरथ को देखकर खिलखिलाकर हँस रहे हैं। अपनी सेना को उन्होंने संकेत किया कि राजा गुह को जिन्दा पकड़ कर ले आओ ॥ ६५ ॥ सुनकर दशरथ की प्रबल सेना ने, जिसको युद्ध के सारे कौशल ज्ञात हैं, चारों ओर से घेर कर गुह चंडाल को बन्दी कर लिया ॥ ६६ ॥ इसके पश्चात् सभासदों ने उसको लाकर दशरथ के सामने पेश किया। राम को देखते ही (गुह को) पुरानी बातें याद आ गईं। उसने जाकर राम के चरणों में प्रणाम किया और राम से अपनी बात कहने लगा ॥ ६७ ॥ सुनो राम, तुम्हारे चरणों में निवेदन करता हूँ, मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था। किस दोष के कारण मैं चंडाल बना वह स्वयं सुनो। तुम्हारे वंश में एक राजा भगीरथ थे ॥ ६८ ॥ वह महाधर्मशील राजा थे, ब्रह्मा की आराधना कर वे ब्रह्मलोक से गंगा को उतार लाए। विष्णु के पैरों की धूल से युक्त और तुलसी के साथ सर्वोत्तम गंगा संसार में प्रकट और सर्वत्र प्रसिद्ध हो गईं ॥ ६९ ॥ गंगा के समान त्रिभुवन में दूसरा कोई तीर्थ नहीं। सारे महान् पुरुषों ने इसमें स्नान किया। मैंने मन ही मन गर्व किया कि मैं ब्राह्मण हूँ और गंगा आदि सारे तीर्थ मेरे शरीर में हैं ॥ ७० ॥ मैंने गंगा के जल में स्नान नहीं किया। इस पर गंगा ने क्रोधित होकर मुझको शाप दिया। ऐ ब्राह्मण तूने अपने गर्व में मुझमें स्नान नहीं किया। इसी शाप से तेरा जन्म चंडालों में होगा ॥ ७१ ॥ तू गुह नाम लेकर चंडालों का राजा बनेगा। इतना कहने के बाद शाप के खंडन का उपाय भी बताया।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

बाधा न करे ते प्राणीने, विघ्न सरवे जाय रे,
कहे दास गिरधर कहुं हवे, श्रीरामजन्म कथाय रे। ४०।

उस प्राणी को विघ्न बाधा नहीं पहुँचाएँगे—समस्त विघ्न (नष्ट हो) जाएँगे। गिरधरदासजी कहते हैं—(मैं) अब श्रीराम के जन्म की कथा कहता हूँ। ४०।

* * *

अध्याय-१४ (कौशल्या से राम का आविर्भाव)

राग धनाश्री

राय दशरथनी त्रण राणी, ते सगर्भा थई गुण खाणी,
चंद्र शुक्ल पक्षनी जेम, पामे दिन दिन वृद्धि तेम। १।
त्यारे दशरथ प्रत्ये वचन बोल्या, गुरु वसिष्ठ पावन,
जाओ राणीओ पासे राज, जे मागे ते आपो आज। २।
जेने जेवी इच्छा होय, तेना पूरा मनोरथ सोय,
छे धर्मशास्त्रनी रीति, माटे आचरो एवी नीति। ३।
ऊठ्या वचन सुणीने राय, शुभ मुहूरत जोईने जाय,
पहेला आव्या केकैने घेर, तेणीए त्यां विचारी पेर। ४।
बेठी रिसाई तेणी वार, जाणे सर्पिणी क्रोध अपार,
एवुं जोई अयोध्या भूपाळ, पासे आवी बोल्या तत्काळ। ५।

अध्याय-१४ (श्रीराम का आविर्भाव)

राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं। गुणों की खानों जैसी वे स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं। चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में जैसे वृद्धि प्राप्त करता है, वैसे वे प्रतिदिन विकास को प्राप्त होती थीं। १। तब पावन गुरु वसिष्ठ दशरथ से यह वचन बोले—हे राजा! रानियों के पास जाओ (और) आज जो वे माँगेंगी, वह उन्हें दो। जिसकी जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार उसका वही मनोरथ पूर्ण करो। धर्मशास्त्र की (कही हुई यह) रीति है। इसलिए ऐसी नीति का व्यवहार करो। २-३। वे राजा (यह) वचन सुनकर उठ गये और शुभ मुहूर्त देखकर चले। (सबसे) पहले कैकेयी के घर आये। तब उसने एक युक्ति सोची। ४।

केम रिसाई तुं राणी ? जे मागे ते आपुं आणी,
तुं वहाली छे तन मन धन, बोल्यने मुज साथे वचन । ६ ।
मुख मरडी बोली तेणी वार, सुणो राय कहुं निरधार,
कौशल्याशुं राखो छो हेत, तेने मानो छो प्रेमसमेत । ७ ।
राखो अंतर मारी साथ, एवुं ना घटे तमने नाथ,
ते छे वहाली तन मन धन, मारी साथ ना मेळवो मन । ८ ।
अहीं आव्या शुं करवा काज ? पूरो तेना मनोरथ आज,
एवां सांभळी राय वचन, दीधुं राणीने आलिंगन । ९ ।
प्राणवल्लभा तुं मने वहाली, तने मळवा हुं आव्यो चाली,
एम कही घणां विनय वचन, राणी संतोषी राजन । १० ।
आप्यां पट आभूषण सार, कराव्यां भूपे दान अपार,
करी केकैनी आश्वास, पछी आव्या सुमित्रानी पास । ११ ।
ऊठी अबळा तेणी वार, कर्यो नरपतिने नमस्कार,
आप्युं आसन पूजन कीधुं, घणी स्वागते मान ज दीधुं । १२ ।

---

उस समय वह रूठकर बैठी (हुई थी) । मानो (कोई) साँपिन अपार क्रुद्ध हुई हो । ऐसा देखकर, तत्क्षण अयोध्यापति उसके पास आकर बोले । ५ । हे रानी ! तू क्यों क्रुद्ध हुई ? जो तू माँगे उसे लाकर मैं देता हूँ । तू तन-मन-धन से मेरी प्यारी है । (अतः) मुझसे बात कह । ६ । उस समय मुँह फेरकर वह बोली—सुनो राजा ! मैं निश्चय-पूर्वक कहती हूँ । तुम कौशल्या में प्रेमभाव रखते हो; प्रेमपूर्वक उसको मानते हो । मुझसे अन्तर रखते हो । हे नाथ ! तुम्हारे लिए यह योग्य नहीं है । तन-मन-धन से वह तुम्हारी प्यारी है, (इसलिए) मेरे साथ मन नहीं लगाते । ७-८ । यहाँ क्या काम करने आये ? आज उसके मनोरथ पूर्ण करो । राजा ने ऐसे वचन सुनकर रानी का आलिंगन किया । ९ । (उन्होंने कहा—) हे प्राणवल्लभा ! तू मुझे प्यारी (लगती) है । तुझसे मिलने के लिए मैं स्वयं चला आया । विनय से युक्त ऐसे बहुत वचन कहकर राजा ने रानी को सन्तुष्ट किया । १० । राजा ने उसे सुन्दर वस्त्र और आभूषण दिये और उससे अमित दान दिलाये । कैकेयी को आश्वस्त कर, बाद में वे सुमित्रा के पास आये । ११ । उस समय वह स्त्री उठी और राजा को उसने नमस्कार किया, (उन्हें) आसन दिया, (उनका) पूजन किया और बहुत स्वागत करते हुए उनका सम्मान ही किया । १२ । मन्द-मन्द मुसकुराकर रानी (उनके सामने) हाथ जोड़कर खड़ी रही ।

मंद हास्य करीने राणी, ऊभी सन्मुख जोडी पाणि,
घणां मीठां मधुरां वचन, सुणी सुख पाम्या राजन । १३ ।
जे बोली हती केकै आप, तेनो लाग्यो तो राय ने ताप,
सुमित्रानां वचनरूपी जळ, तेणे भूप थया शीतळ । १४ ।
सुमित्रानो झाली हाथ, हसी बोल्या अयोध्यानाथ,
माग्य माग्य इच्छावर आज, पूरुं सकळ मनोरथ काज । १५ ।
सुमित्रा कहे—सदा आचरण चित्त रहेजो तमारे शरण,
कौशल्यानो पुत्र थाय रतन, तेनी सेवामां रहे मुज तन । १६ ।
जेष्ठनी पाळवी आज्ञाय, धरम-नीतिनो एवो न्याय,
सुमित्रानां वचन वरिष्ठ, लाग्यां अमृतथी अति मिष्ट । १७ ।
हरखीने पछी आप्यां भूप, अलंकार ने वस्त्र अनूप,
राणीने हाथे घणां दान, अपाव्यां द्विजने सन्मान । १८ ।
संतोषीने चाल्या नरेश, कौशल्या गृहे करियो प्रवेश,
राणी रहित व्यथा थई शांत, बेठी अंतरगृहमां एकांत । १९ ।
थयो ब्रह्मनो आविर्भाव, देखे राम स्वतंतर साव,
इंदिरावर पूरण ब्रह्म, शिव ब्रह्मा न जाणे मर्म । २० ।

---

(उसके) बहुत मधुर-मधुर वचन सुनकर राजा ने सुख पाया। १३। कैकेयी स्वयं जो बोली थी, राजा को उससे ताप पहुँचा था। सुमित्रा के वचन रूपी जल को पाकर उससे राजा शान्त हो गये। १४। सुमित्रा का हाथ थामकर अयोध्यापति दशरथ हँसकर बोले—माँग; आज तू मन-चाहा वर माँग। मैं सब इच्छित कार्य पूर्ण करता हूँ। १५। सुमित्रा कहती है—(मेरा) आचरण (और) मन नित्य आपकी शरण में रहे। कौशल्या के (जो) पुत्ररत्न उत्पन्न होगा, उसकी सेवा में मेरा पुत्र रहे। १६। ज्येष्ठ की आज्ञा का पालन हो—ऐसा धर्म-नीति (शास्त्र) का न्याय (निर्णय) है। सुमित्रा के (ये) श्रेष्ठ वचन राजा को अमृत से भी मधुर जान पड़े। १७। फिर आनन्दित होकर राजा ने (उसे) अनुपम आभूषण तथा वस्त्र प्रदान किये। रानी के हाथों उन्होंने ब्राह्मणों को दान दिलाया और सम्मान कराया। १८। सन्तुष्ट होकर राजा चले गये (और) उन्होंने कौशल्या के गृह में प्रवेश किया। वह रानी व्यथा-रहित और एकान्त अन्तर-गृह में शान्त बैठी थी। १९। ब्रह्म का आविर्भाव हुआ है, अतः वह राम को बिलकुल स्वतंत्र रूप में देखती है। इन्दिरापति भगवान (विष्णु) पूर्ण ब्रह्म हैं। शिवजी और ब्रह्मा उसका मर्म नहीं जानते। २०। जिसकी आज्ञा लोकपाल मानते हैं, जो

जेनी आज्ञा माने लोकपाळ, करता जे उदे स्थिति काळ,
कौशल्यानुं उदर ज्ञान खाणी, छुपाय तेमां सारंगपाणि । २१ ।
अंतरजामी एक निसंग, रह्या व्यापी सर्वे अंग,
कौशल्या नेत्रे अभिराम, देखे सर्वत्र एक ज राम । २२ ।
स्थूळ सूक्ष्म कारण देह, त्रि-अवस्था कहीए जेह,
ते रहित थई छे वृत्ति, खट ऊरमी पीडा नथी करती । २३ ।
रामरूप थई निष्काम, बाह्य भीतर देखे राम
सप्तमी भोमिकाए स्थिति, परात्पर तणी जे रीति । २४ ।
समाधिस्थ बेठी एक लग्न, ब्रह्मानंदमां थईने मग्न,
एवी राणीने दीठी बेठी, जोई रायने चिंता पेठी । २५ ।
जाण्युं ए मुज साथे रिसाइ, नव बोले घणुंये बोलावी,
रुदे चांपी आलिंगन दीधुं. हांक मारी घणुं हेत कीधुं । २६ ।
सुणी रायनां प्रेम वचंन, उघाडचां कौशल्याए लोचंन,
नथी देहनुं भान लगार, न जाणे हुँ छुं नर के नार । २७ ।
त्यारे राजा कहे—माग्य आज, तारा पूरुं मनोरथ काज,
बोल्यां कौशल्या राणी गंभीर—हुं छुं जगदात्मा रघुवीर । २८ ।

उत्पत्ति, स्थिति और लय के कर्ता हैं, वे ही भगवान् शारंगपाणि ज्ञान-खानि कौशल्या के उदर के अन्दर छिपे हैं । २१ । वह एक अन्तर्यामी, निःसंग भगवान उस (कौशल्या) के सभी अंगों में व्याप्त रहे । कौशल्या के सुन्दर नेत्र सर्वत्र एक ही राम को देखते हैं । २२ । देह की स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक जो तीन अवस्थाएँ कही जाती हैं, कौशल्या की वृत्ति उनसे रहित हो गयी है । (अतः) कोई भी कटु भाव की लहर उसे पीड़ा नहीं पहुँचाती । २३ । वह राम-रूप एवं निष्काम हो गयी । वह अन्तर-बाह्य राम को देखती है । सातवीं अवस्था में उसकी वैसी स्थिति हो गयी जो परात्पर अवस्था में होती है । २४ । ब्रह्मानन्द में मग्न होकर वह एक मुहूर्त भर समाधिस्थ हो बैठी । रानी को ऐसी (अवस्था में) बैठी देखकर राजा को चिन्ता हो गयी । २५ । उन्हें जान पड़ा कि वह मुझसे रूठ गयी है, इसलिए यह बहुत बुलाने पर भी नहीं बोलती । हृदय से लगाकर उन्होंने उसका आलिंगन किया, उसे पुकार कर उससे बहुत प्रेम (पूर्वक व्यवहार) किया । २६ । राजा के प्रेम (पूर्वक कहे) वचन सुनकर कौशल्या ने आँखें खोलीं । उसे ज़रा-सा भी देह का भान नहीं है । मैं नर हूँ या नारी—यह भी वह नहीं जानती है । २७ । तब राजा कहते हैं—(हे रानी) आज (तू) माँग । तेरा मनोरथ-मनोवांछित

अज्ञान अपेक्षा नथी, पूर्ण काम हुं छुं सर्वथी,
रह्यो विश्व सकळ भरपूर, स्थूल लिंग कारणथी दूर। २९।
महा कारण न होये मारुं रूप, हुं तो आत्माराम अनूप,
द्वैताद्वैत ने ज्ञाता ज्ञान, नथी मारे ध्याता ध्यान। ३०।
हुंनो साक्षी सर्वनिवासी, साखी चैतन्य विश्वप्रकाशी
सच्चिदानंद छुं अविनाशी, सुखरूप आनंद-विलासी। ३१।
एवुं सांभळी दशरथराय, मनमां घणुं विस्मे थाय,
अरे राणी तने शुं थयुं ? आज भान तारुं क्यां गयुं ? । ३२।
मने ओळख, हुं छुं कोण ? केम थई छेक अजाण ?
तने करी गयो रावण हरण, हुं लाव्यो करी पाणिग्रहण। ३३।
सुणी रावण केरुं नाम, करी गर्जना बोली भाम,
लाव्य धनुष बाण आ दिश, छेदुं रावणनां दश शीश। ३४।
त्रिशिरा खर दुखर मारुं, ताडिका सुबाह संहारुं,
शूर्पणखानुं छेदुं नाक, छोडुं बंध सकळ रिपु पाक। ३५।

---

कार्य मैं पूर्ण करता हूँ। कौशल्या रानी गम्भीरता पूर्वक बोली—मैं जगदात्मा रघुवीर हूँ। मुझमें कोई अज्ञान तथा अपेक्षा नहीं है। मैं सर्वतः पूर्णकाम हूँ। (मुझसे) सकल विश्व परिपूर्ण (व्याप्त) है—स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण अवस्था से मैं दूर हूँ। महाकारण मेरा रूप नहीं हो सकता। मैं तो अनुपमेय आत्माराम हूँ। मेरे लिए द्वैत-अद्वैत और ज्ञाता-ज्ञान तथा ध्याता-ध्यान का अन्तर नहीं है। २८-३०। 'मैं' का साक्षी सर्व-निवासी है, वह साक्षी चैतन्य रूप तथा विश्व-प्रकाशी है। मैं सच्चिदानन्द एवं अविनाशी हूँ, सुख-रूप एवं आनन्द-विलासी हूँ। ३१। ऐसा सुनकर दशरथ राजा को मन में बहुत आश्चर्य हो गया। (वे बोले—)अरी रानी! तुझे क्या हुआ? आज तेरा भान कहाँ गया? । ३२। मुझे पहचान! मैं कौन हूँ? तू निपट अज्ञान क्यों हुई? जब रावण तेरा अपहरण कर गया था, तब तुझे लाकर मैंने (तुझसे) पाणिग्रहण (विवाह) किया। ३३। रावण का नाम सुनकर वह भामा (स्त्री) गर्जन कर बोली—इसी समय धनुष-बाण लाओ। मैं रावण के दसों मस्तकों को काटती हूँ (काटूँगी)। त्रिशिरा, खर और दुखर (दूषण) को मारती हूँ (मारूँगी)। ताड़का-सुबाहु का संहार करती हूँ (करूँगी), शूर्पणखा की नाक छेदूँगी। स्वर्ग के शत्रु—रावण के (बनाये) समूचे बन्धन छुड़ा दूँगी—देवताओं को मुक्त करूँगी। ३४-३५। रानी ने ऐसा सकल-निःशेष चरित्र कहा और राजा सुनते रहे। तो राजा दशरथ को दुःख जग

एम सकळ चरित्र अशेष, कह्यां राणीए सुणतां नरेश,
राय दशरथने दुःख जाग्युं, राणीने कांई चेटक लाग्युं । ३६ ।
कर्युं कामण कोईए अचेत, वा वळग्युं भूत के प्रेत,
एम चिंता करी नरदेव, तेडाव्या गुरुने ततखेव । ३७ ।
आवी जोयुं वसिष्ठे अनूप, कोशल्या ने दीठां रामरूप,
जेम अंजन विद्यावान, आडरहित देखे ते धन । ३८ ।
एम दीठा वसिष्ठे राम, कोटी कंदर्प मूर्ति श्याम,
स्त्रीनी जे हती आकृति, ते जोयामां नथी आवती । ३९ ।
रघुवीर मूर्ति चित्त बांधी, मुनिवरने थई छे समाधि,
त्यारे बोलावे छे राजंन, नथी बोलता ते मुनिजंन । ४० ।
राय बीन्या तेणी वार, आ तो कौतुक दीसे अपार,
आ वसिष्ठ जेवा मुनिराज, तेने भूते झडप्या आज । ४१ ।
मोटुं चेटक छे ए मांये, हवे नासीने जइए क्यांये ?
एम चिंता करे छे भूपाळ, एवे जाग्या गुरु ततकाळ । ४२ ।
भूपे पूछ्युं लागी पाय, गुरु कहे—नोहे चेटक राय,
साक्षात् जे श्रीभगवान, शिव ब्रह्मा धरे जेनुं ध्यान । ४३ ।

---

गया—अनुभव होने लगा। उन्हें जान पड़ा कि रानी को कोई टोना लगा है। ३६। इसे किसी ने वशीकरण कर अचेत (ज्ञानहीन) किया अथवा भूत या प्रेत ने झपेट लिया—ऐसी चिन्ता करते हुए तत्क्षण राजा ने गुरु (वसिष्ठ) को बुलाया। ३७। जिस प्रकार विद्या का कोई ज्ञाता अंजन लगाने पर बिना किसी आड़ के धन को देखे, उसी तरह वसिष्ठ ने आकर देखा, तो उन्होंने कौशल्या को अद्भुत राम रूप हुए देखा। ३८। इस प्रकार वसिष्ठ ने राम की करोड़ों मदन के समान सुन्दर श्यामवर्ण मूर्त्ति को देखा और स्त्री की (कौशल्या की) जो आकृति (देह) थी, वह उनके देखने में नहीं आ रही थी। ३९। रघुवीर की मूर्ति में चित्त बाँध (लगा) लिया, तो वसिष्ठ को समाधि लग गयी है—इसलिए राजा उन्हें बुलाते हैं (बोलने को प्रेरित करते हैं—पूछते हैं), तो मुनिवर बोलते नहीं हैं। ४०। उस समय राजा डर गये—यह तो अद्भुत कौतुक दिखायी देता है। वसिष्ठ जैसे ये मुनिराज हैं—उन्हें आज भूत ने झपेट लिया। ४१। इसमें यह बड़ा ही पिशाच है, अब (हम) भाग कर कहाँ जाते हैं (जाएँ) ? राजा ऐसी चिन्ता कर रहे हैं, तो तत्काल गुरु जागृत हुए। ४२। गुरु के चरणों में लगकर राजा ने उनसे पूछा, तो गुरु कहते हैं—राजा, यह टोना नहीं है। जिनका ध्यान शिवजी,

ते कौशल्या उदर अवतार, आव्या हरवा भूमिनो भार,
तमने चरित्र कह्यां जेटलां, प्रगट थई करशे तेटलां । ४४ ।
आजकालमां हवे भूप, अवतरशे रामस्वरूप,
एवुं सांभळी दशरथराय, पाम्या आनंद हरख न माय । ४५ ।
पछे गुरुने तेडी साथ, सभामांहे आव्या नृपनाथ,
घणुं हरख-भर्या राजन, आव्यो प्रसव समयनो दन । ४६ ।
अयोध्यावासी नरनार, तेना हरख-तणो नहि पार,
उदय चंद्रनो इच्छे चकोर, घन चाहे बपैया मोर । ४७ ।
भानु आगम फूले कंज, कुसुमकर कोकिल रंज,
एम कुशळ इच्छे प्रजाय, क्यारे रायने पुत्र ज थाय । ४८ ।
मेल्या अखंड दीपक द्वार, निशाए जागे सहु नरनार,
बेठा गणक लेई घडियाळ, सभा पूरी बेठा भूपाळ । ४९ ।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

भूपाळ बेठा सभामांहे, वसिष्ठ आदे मुनिजंन रे,
वाट जुए छे वधामणीनी, क्यारे प्रगटे जुगजीवंन रे ? । ५० ।

* * *

ब्रह्माजी कहते हैं, वे ही भगवान प्रत्यक्ष कौशल्या के उदर में, भूमि का भार हरण करने के लिए अवतार के रूप में, आये (हैं)। तुम्हें जितना चरित्र (कौशल्या ने) बताया, प्रकट होकर वे उतना करेंगे। ४३-४४। हे राजा, अब आजकल में (अभी-अभी) वे भगवान राम रूप में अवतरित होंगे। ऐसा सुनकर राजा दशरथ को आनन्द प्राप्त हुआ, उनका हर्ष कहीं समाता नहीं। ४५। तदनन्तर गुरु को साथ में लेकर राजा सभा में गये। वे बहुत आनन्दित थे। (कौशल्या की) प्रसूति का दिन (निकट) आ गया। ४६। अयोध्या के नर-नारियों के आनन्द का कोई पारावार नहीं था। जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा के उदय की अभिलाषा करता है, जिस प्रकार चातक और मोर बादल (के आगमन) की इच्छा करते हैं, उसी प्रकार सब लोग राम के आविर्भाव की इच्छा करते हैं। ४७। सूर्य के उदय से कमल खिलते हैं। बगीचे से कोयल को आनन्द होता है। इस प्रकार प्रजा कुशल की इच्छा करती है और प्रतीक्षा करती है कि कब राजा के पुत्र ही उत्पन्न होगा। ४८। दरवाज़ों पर अखण्ड दीपक लगाये गये। सभी नर-नारी रात को जागृत रहे हैं। ज्योतिषि घटिका-यंत्र लेकर बैठे और राजा सभा लगाकर बैठे। ४९।

राजा और वसिष्ठ आदि ऋषि सभा में बैठे। सब लोग मिलकर प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब जगजीवन (राम) का आविर्भाव होगा। ५०।

* * *

### अध्याय–१५ ( ब्रह्मादिकृत राम की गर्भ-स्तुति )

राग दोहा

देव सकळ त्या आविया, सूतिका घर जे ठार,
गर्भस्तुति करता सहु, अदृश्य रही निरधार। १।
अग्र रह्या सहु देवने, ब्रह्मा चतुर सुजाण,
प्रभु प्रगट्या आगम लही, स्तवता मधुरी वाण। २।

**ब्रह्मा उवाचः**

जय जय अगम अगाध, बोध अविचळ अविनाशी,
आदि पुरुष अव्यक्त, हरि सचराचर-वासी। १।
अखिल विश्व-आधार, अमल अज अंतरजामी,
पूरण-काम परमेश, परात्पर व्यापक स्वामी। २।
अपरिच्छिन्न आनंदरूप, सर्वज्ञ सुखाकर,
ब्रह्म सच्चिदानंद, ज्ञानघन निर्गुण गुणाकर। ३।

---

### अध्याय–१५ (ब्रह्मा आदि द्वारा श्रीराम की गर्भ-स्तुति)

जिस स्थान पर सूतिका (प्रसूति) गृह था, वहाँ सभी देवता आ गये। वे सब निश्चय ही अदृश्य रह कर (भगवान् की) गर्भ-स्तुति करते हैं। १। चतुर और सु-ज्ञानी ब्रह्माजी सब देवों के आगे रहे। जन्म लेकर प्रभु श्रीराम प्रकट हो गये (जब) सभी देवता मधुर स्वर में स्तवन करते रहे। २। ब्रह्माजी कहते हैं—अगम्य, अगाध, बोधमय, अविचल, अविनाशी भगवान् की जय हो। उस आदि पुरुष की, अव्यक्त होने पर भी सचेतन-अचेतन में निवास करनेवाले श्रीहरि की जय हो। तुम अखिल विश्व के आधार हो। तुम अमल (विशुद्ध) हो, अजन्मा (अनादि) और अन्तर्यामी हो। तुम पूर्णकाम, परमेश्वर, परात्पर, (सर्व) व्यापक, (सब के) स्वामी हो। तुम अपरिच्छिन्न (अखण्डित), आनन्दरूप, सर्वज्ञ, सुख के आकर (खान) हो। तुम ब्रह्म सच्चिदानन्द, ज्ञान के घन (मेघ), निर्गुण होने पर भी गुणों के समूह (अथवा खान) हो। ३।

नायिंति मरि॒ यगस्त्याश्रमंबुनकु । बोयि मौनुल सारॆ बॉदिवि कारिंप
गलशुडापापकर्मुल जूचि । यलिगि 'राक्षसुलुगं' डनि शापमिच्चॆ७६०
नदियादिगा राक्षसाकृतुल् बूनि । यदयत मानवाहारमुन् गॊनुचु
दा निंदु वसियिंचि धरणि गारिंचु । दीनि जंपगलेरु तॆंगुव नॆव्वरुनु,
नीवॊक्कडवु दक्क; नीचेतगानि । चाव; दाडुदि यनि चंपगादनकु;
मॆनय गोब्राह्मण हितमैन जालु । जनु जंप गामिनीजनुल राजुलकु;
दॊल्लि धारुणियॆल्ल द्रुंप जिंतिंचु । प्रल्लदुरालैन पडति मंथरनु
संपन्नमति विरोचनु कूतु वज्रि । चंपडॆ? यिदि प्रशस्तमु गादॆ यॆन्दु?
नॆर॒य लोकंबु लनिद्रमुल् गाग । जॆरुप जित्तंबुन जिंतिंचुटयुनु
नलिगि दृढव्रतयगु भृगुपत्नि । जलमॊप्प विष्णुंडु संपडे तॊल्लि?
यदिगान लोकहितार्थमै सतुल । बॊदिवि चंपुटयुनु बुण्यंबॆ यनघ! "७६९

### ताटक वध

यनिन विश्वामित्रु नतुल वाक्यमुलु । दन तंड्रि पनुपुनु दलचि
राघवुडु७७०

(तदनन्तर) वह लोकान्तर को प्राप्त हुआ (मर गया।) (तब) वह (सुकेत की पुत्री) (अपने) पुत्रों के साथ, गर्व से, अगस्त्य के आश्रम में जाकर, मुनियों को बार-बार तंग करने लगी। कलशज (अगस्त्य) ने उन पापकर्म वालों को देखकर, क्रुद्ध हो, शाप दिया कि राक्षस बन जाओ। ॥ ७६० ॥

—तब से शुरू करके राक्षस रूप धारण कर, निर्दयता से मानवाहार (मानवों को आहार रूप में) ग्रहण करती हुई, वह यहीं रहकर पृथ्वी को (लोगों को) कष्ट देती है। तुम्हारे सिवा इसे साहसकर कोई मार नहीं सकता। यह सिवाय तुम्हारे हाथ के, नहीं मरेगी। यह मत कहो कि (यह) स्त्री है, अतः नहीं मारना चाहिए। यदि गो-ब्राह्मणों का हित हो तो राजा लोग स्त्रियों को मार डाल सकते हैं। पूर्वकाल में सारे संसार को मार डालने का विचार करने वाली, मंथरा नामक प्रगल्भा स्त्री को, जो संपन्नमति (मतिमान) विरोचन की पुत्री थी, क्या इन्द्र ने नहीं मार डाला था? क्या यह कर्म जहाँ-कहीं प्रशस्त (स्तुत्य) नहीं माना गया है? (पूर्व में) दृढ व्रत वाली भृगुपत्नी ने लोकों को अनिद्र (अशान्त) बनाकर, नष्ट करने के लिए मन में विचार किया, (तो) क्या विष्णु ने स्वयं ईर्ष्यालु हो (उसको) नहीं मारा था? यही नहीं, हे अनघ! लोक-हित के लिए स्त्रियों को घेर कर (पकड़कर) मार डालना भी पुण्य ही है।' ॥ ७६९ ॥

'हाटकगर्भाभुडगु मौनिमाट । दाटक ताटक दंडितु' ननुचु
घनधनुर्घोषंबु गगनंबुनिंड । निनुचुटयु विनि निंड गोपिंचि
कर्णकठोरमौ कार्मुकध्वनिकि । घूर्णितारुणनेत्रकुटिलास्य यगुचु
रेन्डु हस्तमुलेत्ति रेक्कलतोडि । कोन्ड ड्रिव्वुन वच्चु कौमरु दीपिंप
विदिताट्टहासंबु वेलिदंष्ट्ररुचुलु । वेंदसल्ल दिवियेल्ल वेस वेल्लगिल्ल
जरणघट्टनमुल जटुलसत्त्वंबु । धरणिकि देलुपुचु दरिमि येतेन्चु
ताटक गनुगोनि दशरथरामु । डाटोपमुप्पोन्गननियें दम्मुनिकि;
"जूचिते लक्ष्मण! चूचिते दीनि?। नी चंद मीयंद मी युग्रदृष्टि !
दीनि जूचिन गुंडे दिगुलेरिकैन । मानुने ? यटुगाक मर्दितु दीनि।"
ननुचुंड गर्जन नाकसं बगल ।जनुदेन्चु पदधूळि सकलंबु गप्प७८०
नलि मीरि घोर दानवुरालु ड्रालु । गलगोनि कुरिय राघवुडु गोपिंचि
यनुपमास्त्रंबुल नम्महाशिललु । दुनुमाडि दानि चेतुलु रेन्डु द्रुंचे;

---

**ताड़का का वध**

ऐसा (विश्वामित्र के कहने पर) विश्वामित्र के अतुलनीय वाक्यों का (और) अपने पिता की आज्ञा का स्मरण कर राघव ने, ।। ७७० ।।

—'हाटकगर्भ (ब्रह्मा) की आभा वाले मुनि के वचन को न टालते हुए, 'ताडका को दण्डित करूँगा' ऐसा कहते हुए (अपने) महान् धनुष की टंकार से सारे आकाश को गुंजरित कर दिया। (उसे) सुन (ताड़का) अत्यधिक रुष्ट हो, कर्णकठोर हो कार्मुक (धनुष) की ध्वनि के कारण चंचल और अरुण नेत्र तथा विकृत मुख वाली हुई। (वह) अपने दोनों हाथों को (ऊपर) उठाकर, (मानों) पंखोंवाले पर्वत के बड़े वेग से आने वाली शोभा के समान (झपटती हुई) प्रकट अट्टहास से, श्वेत दंष्ट्राओं की कान्ति को बिखेरती हुई, समस्त आकाश को, शीघ्रता से, उन्मूलित करती हुई, पदाघातों से अपनी प्रबल शक्ति का परिचय धरणी को देती हुई, दौड़ती हुई, आनेवाली (उस) ताड़का को देख, दाशरथी-राम संभ्रम से मन के उमड़ आने पर, भाई से (यों) बोले, 'देखा लक्ष्मण! देखा इसे? यह ढंग, यह रूप (और) यह उग्रदृष्टि (देखी)? इसको देखने पर किसके हृदय का भय कम होगा (किसे भय न होगा)? इसलिए मैं इसका वध करूँगा।' ऐसा कहते समय, (अपने) गर्जन से आकाश को फोड़ती हुई, आते समय चरण-धूलि से समस्त (संसार) को ढाँकती हुई, ।। ७८० ।।

—वह घोर दानवी, अधिक (भयंकरता को) पार कर, संक्षब्ध होकर,

नप्पुड् लक्ष्मणुंडसुरेशु चेलिय । कप्पाटु गावितुं ननि यन्न करणि
मुक्कुनु जेवुलुनु मोदलंट गोसे । नक्कामरुपिणि कक्कजं बोंदव;
मायलु धरियिंचि मरियु बेक्कम्मु । लायिंति गुरिय विश्वामित्रुडनियें;
'ननघ, संध्याकालमगुचुनुन्नदियु । दनुजुल नेन्दु संध्यल गेल्वरादु;
नीविंक गृपमालि नेलकोनि दीनि । नी विश्वहितमुगा निट संपु' मनुडु
गाधेय मुनि माट गडपक शब्द । वेधि बाणमुल नव्वेड मायलडचि
पेडपेड नार्चुचु बिड्गुचंदमुन । नडतेन्चुचुन्न दानविनि वीक्षिचि
महितास्त्रमोकटि सन्मरुगाडनेय । बहुरक्तधारलु पर्व ना वनित७९०
यसुरशिक्षारंभमंददि रामु । डोसगेनो शरमुलकुपहारमनग,
ब्रळयमारुतमुन बगिलि संध्याभ्र । मिलगूलु तेरगुन निलगूले दूलि;
यप्पुडानंदिंचे नखिलभूतमुलु; । नप्पुडानंदिचिरमरुलु मुनुलु;
ना रामु दीविंचि यालिंगनंबु । गारवबुंन जेसे गौशिकुडंत,

---

पत्थरों की वर्षा करने लगी। (तब) राघव ने क्रुद्ध हो, अनुपम अस्त्रों से उन महाशिलाओं को काट डाला, उसके (ताड़का के) दोनों हाथ काट डाले। तब लक्ष्मण ने उसकी नाक और कान जड़ से काट डाले, मानों वे यह बतलाना चाहते हों कि (आगे) मैं असुरेश (रावण) की बहन की भी यही दुर्दशा करूँगा। तब वह कामरूपिणी स्त्री, आश्चर्य को उत्पन्न करती हुई, माया-रूप धारण कर अनेक अस्त्रों की वर्षा करने लगी। (तब) विश्वामित्र ने कहा, 'हे अनघ! संध्याकाल (निकट) आ रहा है (सन्ध्या होने वाली है)। सन्ध्या समय राक्षसों को जीता नहीं जा सकता। अब तुम दया (भाव) छोड़कर, दृढ़ हो कर इसे, इस विश्व के हित के लिए, यहीं मार डालो।' ऐसा कहने पर गाधेय की बात को न टालते हुए, शब्दवेधी बाणों से उन तुच्छ मायाओं का दमन कर, भयंकर गर्जन करती हुई, बिजली (गाज) के समान आनेवाली राक्षसी को देखकर, एक महान् अस्त्र को (उसके) कुचाग्र पर चलाया। तब वह वनिता (अपने शरीर से) बहती हुई बहु रक्तधाराओं में, ।। ७९० ।।

—[ऐसी लगी] मानों असुरों को दण्ड देने का उपक्रम करते समय वह (ताड़का) राम के शरों को (रक्त का) उपहार दे रही हो। वह (ताड़का) ऐसे पृथ्वी पर गिर पड़ी मानों प्रलय-मारुत से टूटकर सन्ध्या का आकाश धरती पर गिरा हो। तब अखिल भूत (समस्त प्राणी) आनन्दित हुए। तब देवता (और) मुनि आनन्दित हुए। उस राम को गले लगाकर कौशिक ने सम्मानित किया। तब देव, गन्धर्व आदि दिविजों के साथ देवेन्द्र (स्वयं) वहाँ आए; भगवान् श्रीराम के दर्शन कर, प्रार्थना की,

देवगंधर्वादि दिविजुलतोड । देवेंद्रुडचटिकेतेंन्चि, श्रीराम
देवुनि गांचि प्रार्थिचि पूजिंचि । देवविधेयु गाधेयु वीक्षिंचि,
'मम्मु रक्षिप निम्महि बुट्टिनट्टि । यिम्महात्मुनकु नीविम्म भृश्वाश्वु
संतानमैन यस्त्रमुलु शस्त्रमुलु । नंतयु' ननि चेंप्पि यरिगेंनु दिविकि;
निनुडंत ग्रुंकें; नय्येंडनु नाडुंडि । मुनि मरुनाडु रामुनि ब्रेम जीरि७९९

**श्रीरामुनकु विश्वामित्रुडस्त्रशस्त्रमुलिच्चुट**

'राम ! नी विक्रमरणकेळि सूचि । येमु मेंच्चितिमि; नोकिच्चेंदमिंक ८००
नमरोरगासुर यक्षयुद्धमुल । समधिकमगु नस्त्रशस्त्रंबु' लनुचु
दनुशुद्धितोड सुस्थलिनि गूर्चुण्डि । मुनिपति रामु ब्राङ्मुखुनि गाविंचि
यमलमनस्कुडै यखिलंबु दलचि । क्रममुन दंडचक्रंबुनु धर्म
चक्रंबु मरि कालचक्रंबु विष्णु । चक्रंबु शुक्रु वज्रंबनु नसियु
बाशिपाशमु धर्मपाशंबु गाल । पाशंबु नीशानु भयदशूलंबु
नोंगि शक्तियुग्मंबु नुग्रमै मिगुल । नेंगडु नुष्णानुष्णनिर्मिताशनुलु

---

पूजा की (और) देवविधेय (देवताओं की बात मानने वाले) गाधेय को देख, यह कह कर स्वर्ग को (लौट) गये कि 'हमारी रक्षा करने के लिए इस मही (धरती) पर जन्म लेने वाले इस महात्मा को आप भृशाश्व की सन्तान रूपी सभी अस्त्र-शस्त्रों को दीजिए।' तब (इतने में) सूर्यास्त हो गया। वहाँ उस दिन रहकर, दूसरे दिन मुनि ने राम को प्रेम से (अपने पास) बुलाया और कहा—॥ ७९९ ॥

**श्रीराम को विश्वामित्र का अस्त्र-शस्त्र देना**

—'(हे) राम ! तुम्हारी विक्रम (युक्त) रणकेलि देखकर, हम ने सराहा है (प्रसन्न हुए हैं।)। अब तुमको—॥ ८०० ॥

—अमर, उरग (नाग), असुर, यक्ष (के साथ) युद्धों में समधिक (श्रेष्ठ सिद्ध होने वाले) अस्त्र-शस्त्र देंगे।' (ऐसा) कहते हुए तन-शुद्धि के साथ (शरीर को पवित्र बनाकर), सुस्थलि पर बैठकर मुनिपति (विश्वामित्र) ने राम को प्राङ्मुख (पूर्वाभिमुख) बैठाया। अमलमनस्क हो, अखिल (सबकुछ, सर्वेश्वर) का ध्यान करके, क्रमशः दंडचक्र, धर्म-चक्र फिर कालचक्र, विष्णुचक्र, शक्र (इन्द्र) का वज्र और असि (तलवार), पाशिपाश (वरुणपाश), धर्मपाश, कालपाश, ईशान

नखिल दारुणमैन यमरमोदकियु । शिखरियु नन नुल्लसिल्ल गदल् रेन्डु
गंकाळमुनु घोरकपाल मुसल । कंकणाख्यंबुलु ग्रौंचबाणादि
शस्त्रंबु लोंगिनिच्चि सम्मदंबडर । नस्त्रंबु लाग्नेय मन नोप्पुनदियु
ब्राह्मंबु तेजःप्रभंबु नैंद्रंबु । ब्रह्मशिरंबुनु ब्रस्वापनंबु ८१०
नारायणंबु बैनाकंबु शिखर । दारुण सौर सुदामनंबुलुनु
ब्रशमनमुनु विलापनमु सत्यंबु । विशदप्रभल बोल्चु विद्याधरंबु
वायव्य सौम्य संवर्तास्त्रमुलुनु । मायाधरास्त्रंबु मानवमथन
शामन पैशाच संतापनमुलु । दामस मौसल धर्षणास्त्रमुलु
हयशिरंबुनु मायलर्डरिंचि चाल । जयमिच्चु गांधर्व सम्मोहनमुलु
सौरिदि नैषिकमुनु शोषणास्त्रंबु । नरुदुग नाग्नेयमनु सायकंबु
गरुड बाणंबुनु गौबेरशरमु । नारसिंहास्त्रंबु नागबाणंबु
वारिंपरानट्टि वैष्णवास्त्रंबु । वारक नुतिकेक्कु वैद्याधरंबु
रौद्रबाणंबुनु राक्षसास्त्रंबु । भद्रप्रदंबैन पाशुपतास्त्र
मोंगि गर्तरी चक्रमुलुनु मेघास्त्र । मगणितंबैनट्टि यस्त्रजालमुल८२०
नेलमि निच्चिन वानिनेल्ल गैकोनुचु। नलरि रामुंडम्महात्मुनि जूचि

---

(परमशिव) का भयद शूल, (और) क्रम से शक्तियुग्म (विष्णु-शक्ति और शिव-शक्ति), उग्र (और) अति प्रबल उष्ण-अनुष्ण निर्मित अशनियाँ (शुष्काशनि और आर्द्राशनि), सबसे दारुण अमर मोदकी, (और) शिखरी नाम से विराजमान दो गदाएँ, कंकाल, घोर कापाल, मुसल और कंकण नाम वाले, क्रौंच बाण आदि शस्त्रों को क्रम से दिया। सम्मोद के अधिक होने पर (शस्त्रों को देने के बाद) आग्नेय नाम से विराजित अस्त्र, ब्राह्म, तेजःप्रभ, ऐन्द्र, ब्रह्मशिर, प्रस्वापन, ।। ८१० ।।

—नारायण, पैनाक, शिखर, दारुण, सौर, सुदामन, प्रशमन, विलापन, सत्य, विशद प्रभाओं से युक्त विद्याधर, वायव्य, सौम्य, संवर्त (आदि) अस्त्र, (और) मायाधरास्त्र, मानवमथन, शामन, पैशाच-संतापन, तामस, मौसल, धर्षणास्त्र, हयशिर, मायाओं का प्रयोग कर, अधिक विजय दिलाने वाले गान्धर्व-सम्मोहन (नामक अस्त्र), क्रम से ऐषिक, शोषण, अद्वितीय आग्नेय नामक बाण, ।। ८१६ ।।

—गरुड़बाण, कौबेरशर, नारसिंहास्त्र, नागबाण, अवार्य (दुर्निवार) वैष्णवास्त्र, स्तुत्य वैद्याधर, रौद्रबाण, भद्र (कल्याण)-प्रद पाशुपतास्त्र (और) क्रम से कर्तरीचक्र, मेघास्त्र, अगणित अस्त्रजाल, ।। ८२० ।।

—(उपरोक्त सभी अस्त्रशस्त्रों को) प्रेम से देने पर, उन सबको ग्रहण

'मुनिनाथ! सकलास्त्रमुलु भवत्करुण ।गनि कृतार्थुडनैति ; गावुन निंक
सललितंबुग नुपसंहरणास्त्र । मुल नीसंगु' मटन्न मुदमंदि यतडु
सत्यवंतमु रभसमु बराङ्मुखमु । सत्यकीर्तियु दशाक्षमु नवाङ्मुखमु
ब्रतिहारतरमु मारणमुनु शुचियु । शतवक्त्रदैत्य धृष्टमुलु लक्ष्यमुलु
ग्रशनंबु गर वीरकनिकामरुचियु । दशशीर्षमुनु शतोदरमु ज्योतिषमु
विमलंबु मकरंबु विरुचि निष्कुलियु। ब्रमथनंबुनु सुनाभंबुनु सर्व
नाभंबु मरि दुंदुनाभंबु बद्म । नाभंबु दृढनाभ नैराश्यमुलुनु
गायरूपंबु यौगंधरावरण । सौमनस विनिद्र संधानमुलुनु
मोहन विषमाक्षमुलु महानाभ । बाहुविधूत जृम्भकमुलु धान्य८३०
धनमुलु वृत्तिमंतमु रुचिरंबु । नैनय नर्चिर्मालि धृतिमालियनग
गामरूपंबुलुगल महास्त्रमुलु । भूमीशुनकु जेप्पि पोलुपार मरियु
निवियुनुगाक यनेकशस्त्रास्त्र । निवहमुल् रघुवंशनेतकु नोसगि
तत्प्रभावंबुलु दन्मंत्रमुलुनु । दत्प्रयोगंबुलु ददुपसंहृतुलु
विलसिल्लु शस्त्रास्त्र विद्या रहस्य । मुलु सर्वमुनु देल्प मोगि रामुनेंदुट
नंगारसदृशंबुलै कोन्नि घोर । भंगुल धूमनिभंबुलै कोन्नि
यनुपमदीप्तिरम्यंबुलै कोन्नि । तनरारु बहुदिव्यतनुवुलै कोन्नि

---

करते हुए, सन्तुष्ट होकर राम उस महात्मा को देखकर (बोले), 'हे मुनिनाथ ! सकल अस्त्रों को भवत् (आपकी) करुणा (कृपा) से प्राप्त कर, कृतार्थ हुआ हूँ। अतः अब इच्छा (प्रेम) से उपसंहरणास्त्रों को दीजिए। (ऐसा) कहने पर प्रसन्न हो उन्होंने (विश्वामित्र ने) सत्यवन्त, रभस, पराङ्मुख, सत्यकीर्ति, दशाक्ष, नवाङ्मुख, प्रतिहारतर, मारण, शुचि, शतवक्त्र, दैत्य, धृष्ट, लक्ष्य, कशन, करवीरक, निकामरुचि, दशशीर्ष, शतोदर, ज्योतिष, विमल, मकर, विरुचि, निष्कुलि, प्रमथन, सुनाभ, सर्वनाभ और दुन्दुनाभ, पद्मनाभ, दृढनाभ, नैराश्य, कामरूप, यौगन्धर, आवरण, सौमनस, विनिद्र, सन्धान, मोहन, विषमाक्ष, महानाभ, बाहुविधूत, जृंभक, ॥ ८३० ॥

—धान्य धन, वृत्तिमन्त, रुचिर, श्रेष्ठ अर्चि, मालि, धृति-मालि नामक कामरूप वाले महास्त्रों को शोभायुक्त विधान से भूमीश (राजा राम) को कहकर (देकर) और इनके अतिरिक्त अनेक शस्त्र-अस्त्र निवहों (समूहों) को रघुवंश-नेता को देकर, उनके प्रभाव, उनके मन्त्र, उनके प्रयोग, उनकी उपसंहृतियाँ (उपसंहरण के विधान), शस्त्रास्त्र-विद्या के शोभायमान रहस्यों को, सबकुछ (राम को) बताने पर, क्रम से राम के

परुवडि जन्द्रप्रभंबुलै कोन्नि । परिकिंप भानुदीप्तंबुलै कोन्नि
बहुळांधकार विभ्रममुलै कोन्नि । महितट्टाहासभीमंबुलै कोन्नि
यकलंकमूर्तलिट्मर नेतेंन्चि । मुकुळित करयुग्ममुलतोड निलिचि
८४०
'ये कार्यमोंर्नरिंतु? मेमिट वनुपु? । माकेमियानति ? मनुजलोकेश !'
यनुडु 'ने दलचिनयप्पुडु मीरू । चनुदेन्डु, पोंन्ड'न्न सकलास्त्रमुलुनु
वलगोंनि भक्ति नव्वसुमतीपतिकि। नेलमितो म्रोक्कुचु नेगें; नंतटनु,
मुनिनाथु जूचि केल्मोंगिचि राघवुडु। विनयंबु भक्तियु विश्वासमेंसग
'ननघ! कृतार्थुडनैति नी करुण!'। ननि विनुतिंचि विश्वामित्रु वेंन्ट
नरुगुचो नट वामनाश्रमभूमि । गरमोंप्पुटयु जूचि काकुत्स्थकुलुडु
'ई पर्वतमुचेंन्त निदियोंक्क वनमु । चूपुल किंपारि सोंम्पुल नलरि
पोंलुचु नानामृगंबुलु गलध्वनुलु । गल पक्षिकुलमुलु गलगि चेंन्नगुचु
नुन्नदि याश्रमंबो संयमींद्र ! । येंन्ननेंव्वरिदि ? यिंदेंल्ल जंतुवुलु
सुखलील नुन्नवि चूड; निक्कडिकि । निलज्ञ! येंक्कडनी यज्ञभूमि? ८५०

समक्ष कुछ तो अंगार सदृश, कुछ घोर-भंगिमाओं में धूम सदृश, अनुपम-दीप्तिरम्य हो कुछ, कुछ बहुदिव्य शरीरों से विराजमान, उनके बाद चन्द्रप्रभा के समान कुछ, कुछ देखने पर भानुदीप्त, कुछ बहुलान्धकार-विभ्रम, कुछ महित-अट्टहास से भीम (भयंकर) अकलंक मूर्ति वाले (अस्त्र, शस्त्र), क्रम से आकर, मुकुलित कर-युग्मों से खड़े होकर बोले, ।। ८४० ।।

—'हे मनुजलोकेश ! कौन-सा कार्य करें ? क्या आदेश है ?' (ऐसा) कहने पर 'मैं जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तभी तुम लोग आ जाओ । (अब) चले जाओ ।'—ऐसा (राम के) कहने पर सभी अस्त्र भक्ति से उस वसुमती-पति की प्रदक्षिणा कर, प्रेम से चरण-स्पर्श कर चले गए । तब, मुनिनाथ को देख, हाथ जोड़, विनय, भक्ति, विश्वास से प्रकाशमान राघव बोले 'हे अनघ ! तुम्हारी करुणा (कृपा) के कारण मैं कृतार्थ हो गया हूँ ।' ऐसा (विश्वामित्र की) विनुति कर, विश्वामित्र के साथ चल पड़े । वहाँ (मार्ग में) वामनाश्रम भूमि को, अधिक सुन्दरता से विलसित होते देख, काकुत्स्थ कुलज (राम) ने पूछा—'इस पर्वत के पास यह एक वन है । यह देखने में सुन्दर, सौन्दर्य से पूर्ण, शोभायमान, नाना प्रकार के मृगों (पशु), कलध्वनियों से युक्त, पक्षि-कुल से समायुक्त, यह आश्रम शोभा दे रहा है । हे संयमीन्द्र ! यह किसका है ? यहाँ सभी जन्तु सुखलीला से हैं, यहाँ से हे सर्वज्ञ ! आपकी यज्ञभूमि कहाँ है ? ।। ८५० ।।

येटनुंडि चनुदेन्तु रेचि राक्षसुलु । चटुलोद्धतुलु नीदु जन्नंबु सेरुप ?
यागरक्षणमुगा नखिलराक्षसुल । वेगवे निर्जितु विशिखाळि' ननिन
नक्कौशिकुडु जगदभिरामु रामु । जेक्किलि वुणिकि संस्नेहुडै पलिके;
'ननघ ! नी वेरुगनि यर्थंबुगलदे? । विनुमु नाचे विन वेडुकयेनि ;

### श्रीरामुनकु विश्वामित्रुडु सिद्धाश्रम विषयमेरिगिंचुट

मुनु विष्णुदेवुडु मुदमुतो दपमु । गोनकोनि काविंचुकोरकुनै यिचट
युगमुलनेकंबु लुंडगा ननघ । मगु वामनाश्रममंदुरु दीनि ;
मरियुनु सिद्धाश्रमंबुनु ननग । वरलु नी याश्रमवनमु लोकमुल ;
जननाथ ! बलि विरोचनतनूजुंडु । घनराज्यमदमुन गर्वंबुमिगिलि
येचि मरुत्तुल निंद्रादिसुरुल । वेचि कारिंपंग विबुधुलु मुनुलु
नी याश्रमंबुन केतेन्चि म्रोक्कि । तोयजनाभुनितो निट्टुलनिरि;
८६०
'शरणागतप्रिय ! सर्वलोकेश ! । सरसिजोदर! माकु शरणंबु नीव;
पन्नुगा मम्मेचु बलि यनुवाडः । चेन्नोन्द जन्नंबु सेयुचुन्नाडु ;

—आपके यज्ञ को बिगाड़ देने के लिए चटुल-उद्धत राक्षस कहाँ से दुर्निवार रूप (अतिशयता) से आते हैं ? याग-रक्षण के लिए सभी राक्षसों को, शीघ्र ही, विशिखाली (बाण-समूह) से मार डालूँगा ।' (राम के) ऐसा कहने पर, उस कौशिक ने जगदभिराम राम के गालों का स्पर्श करके, संस्नेह (भाव) युक्त हो कहा—'हे अनघ ! ऐसा कौन-सा अर्थ (विषय) है, जिसे तुम नहीं जानते हो? मुझसे (ही) सुनने का शौक है तो सुनो ।' ।। ८५४ ।।

### श्रीराम को विश्वामित्र का सिद्धाश्रम का विषय बताना

—'पूर्वकाल में विष्णुदेव मोद से, श्रद्धायुक्त हो, तपस्या करने के लिए यहाँ अनेक युगों तक रहे । अनघ हो (निष्पाप) इसे वामनाश्रम कहते हैं । और यह आश्रम-वन संसार में सिद्धाश्रम के नाम से भी प्रचलित है । हे जननाथ ! विरोचन का पुत्र बलि अपने घन (महान्) राज्य-मद के गर्व से प्रबल हो मरुत्, इन्द्र आदि देवताओं को अतिशयता से सताने लगा । (तब) विबुध और मुनि लोग इस आश्रम में आकर, प्रणाम कर तोयजनाभ से इस प्रकार बोले ।। ८६० ।।

—'हे शरणागतप्रिय ! सवलोकेश ! सरसिजोदर । तुम्हीं हमारी शरण हो । हमें सताने वाला बलि नामक (व्यक्ति) शोभा से यज्ञ कर रहा है ।

सभ साँ साणु लग़ी, रहे माया मोहिणी ।
सामी सदांई करे, ब्रन्धी ठाह ठग़ी ।
सोटी हंयसि सम जी, कंहिं जोगेस्वर जग़ी ।
भय खों उथी भग़ी, कूँ कूँ कन्दी कुतीअ जाँ ।। १९८ ।।

सामीजी कहते हैं कि मोहिनी माया सब के साथ लगी हुई है (सब को प्रभावित करती रहती है ।) वह सदैव लोगों को बाँधकर (अपने जाल में फँसाकर) कपट एवं धोखे का व्यवहार करती रहती है । पर जब कोई जाग्रत योगीश्वर उसे समता का डंडा लगाता है तब वह भयभीत होकर कुत्ते की तरह कूँ कूँ करके भाग जाती है । (जिस प्रकार कुत्ते पर डंडे का प्रहार करने से, वह दुखी हो कूँ कूँ कर रोता है एवं भयभीत होकर भाग जाता है, उसी प्रकार समता के डंडे लगने पर माया भी भयभीत होकर भाग जाती है ।) ।। १९८ ।।

सारो जग़ु जले, थो बिना बाहि अन्दर में ।
व्रिलो को गुर्मुख बचे, जंहिखे सचु पले ।
सामी मिल्या स्वरूप साँ, पञ्जई दूत दले ।
कंहिखे कीन सले, अन्भय सुख अन्दर जो ।। १९९ ।।

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार भीतर की (मन की अथवा माया की) झूठी आग में जल रहा है । जिसे सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति हुई है ऐसा कोई विरला गुरुमुख ही माया से बचकर, पाँचों ही दूतों (पाँच विकारों) को मार कर, स्वरूप से जा मिला है । वह अपने आन्तरिक आत्म-सुख का रहस्य किसी को भी नहीं बताता ।। १९९ ।।

सारो जग़ु झुरे, थो माया कारणि मन में ।
जंहिखे ड्राइणि ड्रेह में, फिकुर साणु फुरे ।
को नेहीं नारायण खों, दर्सनु दानु घुरे ।
पर्ची प्रेम पुरे, सामी वेठो सम थी ।। २०० ।।

सारा संसार माया के कारण मन में दुखी होता है । वह डाइन उस (मानव) को अपने फन्दे में फँसाकर लूट लेती है । सामीजी कहते हैं, कोई प्रेमी ही नारायण से उसके दर्शन का दान माँगता है तथा पूर्ण (परमात्मा) के प्रेम में ही प्रसन्न होकर, समता अपना कर, सुखी हो जाता है ।। २०० ।।

सारो जग़ु नचे, मनन जे महलात में ।
अठई पहर अन्दर में, थो बिना बाहि पचे ।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, बला खों बचे ।
जंहिखे दृष्टि अचे, सामी सूरजु सिरते ॥ २०१ ॥

सारा संसार मन के महलों (झूठी कल्पनाओं) में नाच रहा है। वह आठों पहर भीतर की झूठी आग में जल रहा है। सामीजी कहते हैं कि करोड़ों में से वही एक (मनुष्य) ही इस (माया रूपी) नागिन से बच सका है, जिसे अपने सिर के ऊपर सूर्य (ज्ञान का सूर्य) दृष्टिगोचर हुआ है (जिसे आत्म-साक्षात्कार हुआ है।) ॥ २०१ ॥

सारो जग़ु ब़ुडे, थो मृघ तृष्णा जे जल में ।
सामी सूर्य खे ड़िसी, ज्ञानी कीन लुड़े ।
विधा जंहि ग़ुडे, पेरनि हेठों पञ्जई ॥ २०२ ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (माया रूपी) मृग-तृष्णा के जल में डूब रहा है। पर जिसने पाँचों (विकारों) को जीतकर अपने पैरों के नीचे डाल दिया है, वह ज्ञानी (आत्मा रूपी) सूर्य को देखकर कभी विचलित नहीं होता है ॥ २०२ ॥

सारो जग़ु वहे, थो अणहून्दे दर्याह में ।
समुझ रे सामी चए, इस्थिति कीन रहे ।
को गुर्मुखु पारि पए, साध संगति जे धीर साँ ॥ २०३ ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (माया के) अस्तित्वहीन (झूठे) समुद्र में बह रहा है, ज्ञान के अभाव के कारण वह स्थित नहीं रह पाता है। केवल कोई गुरुमुख ही साधु-संगत के धैर्य से (जो धैर्य धारण कर साधुओं का संग करता है) पार हो पाता है ॥ २०३ ॥

कूड़ी कल्प करे, मूर्ख मुठा मति रे ।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे ।
पर्छिन्नता पापिणि खों, को प्रेमी रहे परे ।
सामी ड़िसी ठरे, पंहिजे अख्यें पाण खे ॥ २०४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे भ्रमों में कितने ही मूर्ख बुद्धिहीन हो अपने आप को नष्ट कर रहे हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भवसागर में

भटकते रहते हैं। पर कोई प्रेमी ही पच्छंन्नता रूपी (नश्वर मायाजाल) पापिन से दूर रहता है और अपनी आँखों से (अपने को) परमात्मा को देख शीतल होता है ॥ २०४ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
कंहिसाँ नेबहु न थिए, ड्राइणि दु:खदाई।
सामी सभ संसार में, मिठी मन भाई।
कंहि व्रिले विञाई, गुर्मुख गुर ज्ञाति साँ ॥ २०५ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की प्रशंसा सब झूठी है। यह दुखदायी डाइन (माया) किसी से भी प्रेम नहीं निभाती है (सबको धोखा देती है।) सारे संसार में मधुर एवं मन को भानेवाली (मधुर समझी जाने वाली माया) को कोई विरला-गुरुमुख ही गुरु के ज्ञान (उपदेश) से लुप्त कर सका है ॥ २०५ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
छड्रे थिए छल वल साँ, पल में पराई।
सामी जंहिखे साध संगि, अन्भय में आई।
तंहि जाग़ी लिवँ लाई, पाणु वराए पाण साँ ॥ २०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की प्रशंसा सब झूठी है; यह (प्रशंसा) एक ही क्षण में छल-बल से हमें छोड़ कर, दूसरों की हो जाती है। पर जिसे साधुओं के सग से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है, वही जाग्रत तथा (संसार से) विरक्त होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) से (प्रे)म कर पाया है ॥ २०६ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
समुझ बिना संसार खे, मिठी मन भाई।
गुर्मुख गुर ज्ञाति साँ, ममत्व मिटाई।
सामी सदाई, पर्चो रहे पाण में ॥ २०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की बड़ाई सब झूठी है (औ)र विचार-रहित (बुद्धिहीन) संसार (के लोगों) को यह मधुर तथा (म)न को भाने वाली लग रही है। केवल गुरुमुख ही गुरु के ज्ञान से, ममता (मि)टाकर अपने स्वरूप (परमात्मा) में सदैव प्रसन्न रहता है ॥ २०७ ॥

कूड़ी वड़ाई, काया, माया कुल जी।
सहजे थे सामी चए, पल में पराई।
जीएं सुख स्वप्न जो, रहे नाँ राई।
तंहिसाँ लिवं लाई, मूर्ख जीअ मर्म रे ॥ २०८ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की बड़ाई सब झूठी है, यह सहज ही पल भर में पराई हो जाती है (अस्थिर है)। जिस प्रकार सपने में प्राप्त सुख (जाग्रत होने पर) राई जितना भी नहीं रहता है, उसी प्रकार मूर्ख जीव निर्लज्ज होकर झूठे स्वप्न-सुख (माया) से प्रेम लगा कर बैठे हैं ॥ २०८ ॥

करे मति मैली, मूर्ख मुठा केतिरा।
सामी पिया संसार जे, फाहीअ मंझि फैली।
रहे न्यारो नभ ज्याँ, को साधूजन सैली।
जीएं मजिनू लैली, लिवँ साँ लालु गुलालु थे ॥ २०९ ॥

सामीजी कहते हैं कि कितने ही मूर्ख (माया में) अपनी बुद्धि मैली कर नष्ट हो गये हैं, वे संसार के माया-पाश में फँस गये हैं। कोई सच्चा साधु-पुरुष ही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है। वह लैला-मजनू की तरह (प्रियतम परमात्मा के) प्रेम में अनुरक्त रहता है। (परमात्मा के प्रेम में ही मस्त रहता है।) ॥ २०९ ॥

फुर्नें कया फोक, फुरे जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, मिटी पाए मोक।
को आशिकु चढ़ियो अछते, लंघे ट्रेई लोक।
जंहिखे रमिज़ रोक, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ २१० ॥

भ्रम ने संसार के जीवों को लूटकर खोखला बना दिया है (आत्म-धन से वंचित कर दिया है), अतएव वे व्यर्थ ही भवसागर में भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जैसे सद्गुरु ने (भ्रमों को) रोकने की युक्ति बता दी है, वह प्रेमी तीनों ही लोकों को पार कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो गया है ॥ २१० ॥

फुर्नें करे फ़क़ीर, कया जीअ जहान जा।
पिटिनि कारणि पेट जे, धरे सघनि न धीर।
सामी के साधू बचिया, ज्ञानवान गम्भीर।
पाण लखायो पीर, जिनिखे पूरणु पाण में ॥ २११ ॥

भ्रम ने संसार के जीवों को फ़कीर बना दिया है, अतः वे अधीर होकर पेट के कारण अपने को पीट रहे हैं (दुखी हो रहे हैं)। सामीजी कहते हैं कि वे ही गम्भीर ज्ञानवान् साधु (भ्रमों से) बच पाये हैं जिन्हें पीर (सद्‌गुरु) ने अपने आप में ही पूर्ण परमात्मा को दिखा दिया है ॥ २११ ॥

फुर्ने करे फ़क़ीर, कया जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, धरे सघनि न धीर।
को सुजाग्गो सूर्मो, सामी चढ़ियो सीर।
जंहिंखे पूरे पीर, लख्य लखाई अन्भई ॥ २१२ ॥

भ्रम ने संसार के जीवों को फ़कीर बना दिया है (उन्हें आत्म-धन से वंचित कर दिया है), अतः वे अधीर होकर संसार-सागर में भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि वही जाग्रत शूरवीर (ज्ञानी) परमात्मा की ओर उन्मुख हुआ जिसे पूर्णसन्त (सद्‌गुरु) ने आत्मज्ञान का लक्ष्य दिखाया है ॥ २१२ ॥

फुर्ने खों फार्कु, को व्रिलो वेसासी रहे।
सामी ड्रिनों सतिगुरूअ, जंहिंखे तत्व तिलकु।
अन्दरि ब्राहरि आत्मा, हर्दमि ड्रिसे हिकु।
जीएं नाणो नाज़िक, रखे सराफ संदूक में ॥ २१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि वही विरला विश्वासी भ्रमों से मुक्त रह सका है जिसे सद्‌गुरु ने तत्त्वज्ञान रूपी तिलक दिया है (तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया है)। वह हरदम, बाहर तथा भीतर एक ही आत्मा को देखता है; वह सराफ़ की तरह मूल्यवान ख़ज़ाने (आत्म-धन) को (हृदय-रूपी) संदूक में सुरक्षित रखता है ॥ २१३ ॥

फुर्ने खों फार्कु, सामी रहे को सूर्मो।
जंहिंखे ड्रिनों सतिगुरूअ, ऐन, अभेद अशिकु।
वेठो अन्भय तख़ित ते, लाए तत्व तिल्कु।
हर्दम ड्रिसे हिकु, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ २१४ ॥

सामीजी कहते हैं कि वही शूरवीर (ज्ञानी) भ्रमों से मुक्त रहता है, जिसे सद्‌गुरु ने सच्चा अभेद (जो भेदा न जा सके) प्रेम दिया है।

वह तत्त्वज्ञान रूपी तिलक लगाकर आत्मज्ञान रूपी सिंहासन पर बैठा है, तथा हर पल, भीतर एवं बाहर एक ही आत्मा देखता है ।। २१४ ।।

फुर्ने फासाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर, में कोट जन्म पाए ।
तहिंजो लेखो कोन को, जंहिंखे छुटो छद्राए ।
वेही वज़ाए, नंगारो निरबाण जो ।। २१५ ।।

भ्रमों ने संसार के जीवों को उलझा दिया है, अतः वे करोड़ों जन्म पाकर संसार-सागर में भटक रहे हैं । पर जिसे मुक्त (माया से मुक्त अर्थात् सद्गुरु) ने (माया से) छुड़ा दिया है उसकी समानता करने वाला कोई नहीं हैं । वह तो सदैव निर्वाण रूपी नगारा बजाता रहता है (निर्वाण प्राप्त कर उसी में मस्त रहता है) ।। २१५ ।।

फुर्ने फासाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भुली भवन पाण हीं, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, सदा माणे सेज सुखु ।। २१६ ।।

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को फँसा दिया है, अतः वे अपने (स्वरूप) को भूलकर, कोटि-कोटि जन्म पाकर, भटक रहे हैं । कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधु के सहारे (भ्रमों से) बच सका है तथा ममत्व मिटाकर सदैव सुख-शय्या का उपभोग करता है (परमात्मा के साथ विलास करता है) ।। २१६ ।।

फुर्ने फासाए, विधा जीअ वहण में ।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, हरि साँ लिवँ लाए ।
वेठो वज़ाए, नंग़ारो निरबाण जो ।। २१७ ।।

भ्रमों ने जीवों को अपने प्रवाह में फँसा दिया है, अतः वे कोटि जन्म पाकर ग़ैब (रहस्यमय) के ग़ोते खा रहे हैं । सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही परमात्मा से स्नेह कर इन (भ्रमों) से बच सका है तथा निर्वाण रूपी नगारा बजा रहा है (निर्वाण प्राप्त कर उसी में मग्न रहता है) ।। २१७ ।।

फुर्नें फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
पर्छिनु ज्ञाणी पाणखे, सामी सहनि सोक।
को आशिकु चढ़ियो अछते, लंघे ट्रई लोक।
मारे वेठो झोक, आदी अन्भय घर में ॥ २१८ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को लूट कर खोखला बना दिया है, अतः वे अपने को नश्वर समझकर दुःख भोग रहे हैं (अपने को शाश्वत आत्मा न मानकर नश्वर शरीर समझ रहे हैं)। कोई प्रेमी ही तीनों लोकों को पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है तथा दृढ़ (स्थिर) होकर आदि आत्म-ज्ञान रूपी घर में बैठा है (भ्रमों से अविचलित होकर आत्म-ज्ञान को अपना बैठा है।) ॥ २१८ ॥

फुर्नें फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
पिटिनि कारणि पेट जे, चित्त में चोडह लोक।
सामी वेठा सम में, के जाग्या मारे झोक।
जिनि खे ड्रिना सतिगुरूअ, रीझी टका रोक।
लाए महबन मोक, पोख पकाऊं पंहिंजी ॥ २१९ ॥

भ्रमों ने संसार के जीवों को लूटकर खोखला बना दिया है, अतः वे पेट के कारण चित्त के द्वारा चौदहों लोकों में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि कुछ जाग्रत (ज्ञानी) जिन्हें सद्गुरु ने प्रसन्न होकर छुटे पैसे (ज्ञान का उपदेश) दे दिये हैं, वे दृढ़-निश्चयी होकर समता को अपना बैठे हैं। उन्होंने प्रेम का पानी देकर (परमात्मा से प्रेम कर) अपनी (मनुष्य-जन्म रूपी) फ़सल पकाई है अर्थात् परमात्मा से प्रेम कर अपना मानव-जीवन सफल बनाया है ॥ २१९ ॥

फुर्नें फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, पाए तमाँ तोकु।
इस्थति रहे आकास जाँ, को औधूतु असोकु।
जाग्री लोकु परलोकु, लै ड्रिठो जंहिं लख्य में ॥ २२० ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को लूटकर खोखला बना दिया है; वे इच्छाओं के पीछे पड़कर, संसार रूपी सागर में भटक रहे हैं। केवल कुछ शोक-रहित अवधूत ही आकाश की भाँति स्थित (अचल) रहते हैं। उन्होंने जाग्रत होकर लोक तथा परलोक को आत्मा में ही देख लिया है ॥ २२० ॥

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा।
भुली भवनि पाणहीं, चर्या चौरासी।
सामी कई जंहि सूर्मे, खतु फारे खलासी।
अलखु अविनासी, ड्रिठो जंहि अभेदु थी ॥ २२१ ॥

संसार के जीव भ्रमों में फँस गये हैं। वे पागल अपने (स्वरूप) को भूल कर चौरासी (लाख योनियों) में स्वेच्छा से भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं पर जिस शूरवीर (ज्ञानी) ने (पूर्वकर्म रूपी) पत्र को फाड़कर खत्म कर दिया है (जो पूर्व-कर्मों को काटकर मुक्त हो बैठा है), उसने ही अभेद (द्वैत रहित अथवा आत्मा एवं परमात्मा को अभेद मानने वाला) होकर अलख अविनाशी को देखा है ॥ २२१ ॥

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा।
भुली भवनि पाणहीं, चर्या चौरासी।
सामी बचियो को साध संगि, व्रिलो वेसासी।
अलखु अविनासी, घिरी लधो जहिं घर मों ॥ २२२ ॥

संसार के जीव भ्रमों में फँस गये हैं। वे पागल, अपने (स्वरूप) को भूल कर, चौरासी (लाख योनियों) में स्वयं ही भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, वही विरला विश्वासी साधुओं के संग के सहारे (भ्रमों से) बच गया है जिसने (हृदय रूपी) घर में झाँककर अलख अविनाशी को ढूँढ लिया है ॥ २२२ ॥

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा।
रहे अलेपु आकास जाँ, को नेहीं निरासी।
सामी जंहिखे सर्व गति, सम सता भासी।
गंगा गया कासी, भवे कीन भुलनि जाँ ॥ २२३ ॥

सामीजी कहते हैं कि संसार के जीव भ्रमों में फँस गये हैं। वह *निराश प्रेमी ही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है, जिसे सर्वगत* एक ही सत्ता (आत्मा) समान रूप से दिखाई देती है, वह भूले हुए लोगों (अज्ञानी जीवों) की तरह गंगा, गया तथा काशी में नहीं भटकता है ॥ २२३ ॥

बसिरं मोदिकॊळुत्तुमळ्वि निजधात्रीवक्त्रमं नोडि बे-
वसमं निम्म मनक्कॆ निर्भयदिनावं तंदनातंगॆ सॆ-
रिसॆनानॆंदु सुकौशल क्षितिभुजं कट्टाग्रहैगॆय्यॆ सू-
चिसिदळ् कांतॆ वसंतमालॆ निजशोकोद्रेक वृत्तांतमं ।। ४५ ।।

अदं नॆरॆयॆ केळ्दु—

पसुगूसिगॆनगित्तु राज्यपदमं निंदं तपोराज्यदॊळ्
वसुधावल्लभना मुनीश्वरन पादोपांतमं पॊर्दि सा-
धिसुवॆं निर्वृत्ति सौख्यमं विषयसौख्यमं मुख्यमल्तॆंदु भा-
विसि बिट्टं सिरियं सुकौशलनदें वैराग्यसंपन्ननो ।। ४६ ।।

मुनिभोजनविघ्नं म- ※ ज्जननियिनाय्तॆन्न दूसरिं ताय्गेनां-
मुनिवॆनो मुनियप्पन्नॆग ※ मनशनमॆनगॆंदु चित्तदॊळ् तरिसंदं ।। ४७ ।।

अंतु परिच्छेदिसि—

धवलातपत्र वारण ※ विविध ध्वज चामरंगळं राज्यश्री-
गिवु तॊडवॆंदवनॊल्लदॆ ※ भुवनेशं राजभवनमं पॊरमट्टं ।। ४८ ।।

अंतु पॊरमट्टु पादमार्ग दिनुपवनमनॆय्दि कीर्तिधर भट्टारकरँत्रिः प्रदक्षिणंगॆय्दु दीक्षाप्रसादमॆंदु वंदिसि कुल्लिर्पुदु-मागळखिल परिजनं संभ्रमंबॆरसु बंदु—

---

अपने पेट पर मार-मारकर रोती हुई दासी का मुख देखकर सुकौशल के आग्रहपूर्वक यह पूछने पर कि तुम्हें किसने दुःख दिया है, वसंतमाला ने अपने दुःख का कारण सविस्तार (आदि से अन्त तक) कह सुनाया । ४५ उसे पूर्ण सुनकर—"पिता ने समस्त सुखों को त्याग कर, जब मैं बहुत छोटा बच्चा था, मुझे राज्य सौंपा था । उन्होंने इस राज्य-भोग को, विषय-सुख को त्याग कर मुनिवरों के चरणकमलों में बैठकर मोक्ष-सुख पाने की कामना की । वे कैसे महान् वैरागी थे ? । ४६ वैसे महान् वैरगी के उपवास के बाद के अल्पाहार में मेरी माता ने बाधा डाली । इसके लिए क्या मैं माता से कुपित हो जाऊँ ? नही ।" उसने मन में निश्चय किया कि जब तक मैं दीक्षा ग्रहण नहीं करता तब तक मैं उपवास करूँगा । ४७ ऐसा निश्चय करके—यह कहकर कि श्वेतछत्र, हाथी, ध्वज, चामर आदि राजा के आभरण (अलंकरण) नहीं है, उन सबको त्यागकर राज्य से बाहर निकल पड़ा ।। ४८ इस तरह बाहर निकलकर, पैदल चलकर, नगर के बाहर स्थित उपवन में पहुँचकर, तीन बार कीर्तिधर भट्टाकर की

ऎमगिन्नार शरणेंदु मांडलिकरुं सामंतरुं मंत्रि व-
र्गमुमंतः पुरमुं विलासिनियरुं बाय्बिट्टु पुय्यल्चे शो-
कमिदेंकीकॆय गर्भदर्भकणे निम्मं रक्षिसलसाल्गुमें-
दु महादेविगॆ चित्रमालॆगवरं भूपालनप्पैसिदं ॥ ४९ ॥

स्त्री बाल साध्यमिळॆ नि-
म्मी बाहाबलदिनादुदॆनगा तॆरदिं-
दी बालॆय गर्भदॊळि-
र्दा बालननरसुमाळ्पुदिदु निमगॆ बॆसं ॥ ५० ॥

ऎंदु परिजनंबॊडंबडिसि कीर्तिधर मुमुक्षुगळ समक्षदॊळ्
दीक्षॆयं कैकॊंडु—

श्रुतदग्गळिक्कॆ तपदु
न्नतिक्कॆ तन्नॊळॆ नॆगळ्तॆवॆत्तिरॆ भूवि-
श्रुतनॆनॆ सुकौशल व्रति
पति तपदिं श्रुतदिनारुमं गॆलॆवंदं ॥ ५१ ॥

अंतविश्रांततपः श्रीयनप्पुकॆय्दिर्पिनं—

---

प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और करने के लिए दीक्षा प्रदान निवेदन किया। इतने में उसके परिजन वहाँ आ पहुँचे। मांडलिक, सामंत, मंत्रीवर्ग एवं अंतःपुर की स्त्रियाँ यह कहकर ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगीं कि अब हमारा क्या होगा ? राजा ने उन सबों को समझाया कि इसके लिए दुःखी क्यों होते हैं ? मेरी पत्नी के गर्भ में जो बच्चा है वही आप सब लोगों की रक्षा करेगा। यह कहकर महारानी को भी सांत्वना दी। ४९ उसने कहा, आप लोगों के बाहुबल के भरोसे पर स्त्री एवं बालक को शासन करने का अवसर मिला है। मेरी पत्नी के गर्भ से जन्म लेनेवाले बालक को आप सब लोग राजा का मान देकर राज्य चलावें। आप लोगों को यह मेरी आज्ञा है। ५० इस तरह परिजनों को समझाकर, कीर्तिधर यति के सम्मुख दीक्षा ग्रहण करके—धर्मकी अधिकता और तपस्या की प्रगति करते हुए जगत्-प्रसिद्ध सुकौशलपति ने अपने धर्म और तपस्या की महिमा से समस्त (संसार) को जीतने की शक्ति प्राप्त की। ५१ इस तरह (जब सुकौशलपति) अविश्रांत तपस्या कर रहा था तो कदंबवृक्ष में फूल खिल उठे, कुंद पुष्प के ध्वज उग आये, मोर नृत्य

कडवलर्दुवु मॊल्लॆय पू-
गुडि निमिर्दुवु सोगॆ केगिदुवु केदगॆ दे-
ळ्गुडिवोदुवु चादगॆगळ्
कडंगि नुंगिदुवु तोखनियं कारॊळ् ॥ ५२ ॥

आ घनसमय प्रवेशदॊळ् तन्मुनियुगळं वृक्षमूलनियोगनिर्वर्तनानंतरं योग्यकालावेक्षॆयिं कांतारभिक्षॆगॆ बरुतिरॆ—

कण्बरिगॆट्टु दिव्यमुनिगित्तपमानदिनार्तरौद्रदिं
पॆण्बुलियागि पुट्टी सहदेवि बरुतिरॆ कंडशंकितर्
कण्बॊलदॊळ् निवृत्तिपरिणाममॊडंबडॆ धर्मशुक्लदॊळ्
जाण्बडॆदिक्कि कैयनुपसर्ग सहिष्णुगळिर्दरिर्वरुं ॥ ५३ ॥

तनुवं बेर्कॆय्दु तम्मि मुनिपतिगळनुपेक्षॆयं ताळ्दि सन्या-
सनयुक्तचित्तदॊळ् निश्चलमिरिसि जिनश्रीपदाब्जंगळं पं-
चनमस्कारंगळं नालगॆ जपियिसॆ गुंजद्गुहा रंजितं कां-
चनशैलद्वंद्वमिर्पंतिरॆ शुभचरितर् पूण्दुकैयिक्किनिंदर ॥ ५४ ॥

अंतु निंद मुनियुगळमं कंडु कडु मुळिदु—

जडियुत्तं बालमं कण्णुरियनुगुळॆ जिह्वानलं पॆर्चॆ बायिवि-
टटॊडॆवन्नं गर्जिसुत्तुं पवनजवदॆ मेल्वाय्दु पॊय्दत्तु कैयॆ-
रॆडॆयिं बायेरिबायिंदॊडनॆ रुधिरमं कंडमुंसूसुवन्नं
सिडिलॆंबाशंकॆयं पॆण्पुलि पडॆदु मृगीरक्तसेवानुरक्त ॥ ५५ ॥

---

करने लगे, केतकी ने श्वेतध्वज फैलाया और चातक पक्षी उत्साह से वर्षा ऋतु के बूँदों को पान करने लगे। ५२ इस वर्षाऋतु के प्रारम्भ में दो मुनिवर अपने तप के स्थान से उठकर भिक्षा के निमित्त जंगल में आये तो—सहदेवी, जिसने मुनि का अपमान किया था, बाघिन बनकर अविवेकी की भाँति सामने आई। वे मुनि, जिनके मन में मोक्ष पाने की इच्छा थी, किसी तरह की बाधाओं से नहीं डरे। ५३ मुनिवरों ने अपने शरीर को प्राण से अलग किया और मोहरहित हो, मनमें सन्यास-धर्म के प्रति अविचल रहकर, जिन-चरणों एवं पंच-नमस्कारों को रटना (जपना) प्रारम्भ किया। उस समय वे ऐसे सुशोभित प्रतीत हो रहे थे मानो ध्वनि करते हुए खड़े दो सुवर्ण पर्वत हों। ५४ इस तरह खड़े दोनों मुनियों को देखकर, कुपित हो—पूँछ को पटकते हुए, आँखों से अग्नि बरसाते हुए, जीभ से अग्नि-ज्वाला को बढ़ाकर, भयंकर रूप से गरजकर,

अंतापुलि मुनींद्रयुगळद मेलॆ पाय्दुगिबगिमाळ्पुदुमा
महोपसर्गमं सैरिसि—

घातियुमनघातियुमं ※ घातिसि कीर्तिधर योगि मुक्तगॆ संदं
घातिक्षयदिं कैव- ※ ल्यातिशयंबॆत्त ना सुकौशल मुनिपं ।। ५६ ।।

इत्त विचित्रमालॆगॆ तनूभवनागॆ हिरण्यगर्भनॆं-
दत्तु धरित्रिगर्भदॊळॆ वल्लभनागॆ समस्तराज्यसं-
पत्तिगॆ तत्सुतं बळॆदु चागद बीरद मॆ' या र्मॆ दिशा-
भित्तियनॆंटनॆय्दॆ तॆरॆसुत्तिदनात्म यशोदुकूलदिं ।। ५७ ।।

सरस बिसगर्भ गौरं ※ परॆयॆ जसं पुश्पुरक्कॆ गर्भस्त्रावं
दॊरॆकॊळॆ हिरण्यगर्भं ※ धरित्रियं हर्षगर्भमॆनॆ पालिसिदं ।। ५८ ।।

तदपत्यं नहुष चतु- ※ रुदधिवरं वसुदॆयं निर्मिचि भुजाग-
र्वदगुर्वि माण्दनॆ चतु- ※ रुदधियॊळुदवासमिरिसिदं रिपुनृपरं ।। ५९ ।।

ई सकल धरॆयनुग्रभु- ※ जासियॊळळवडिसि नहुषनग्रसुतं सं-
वासं रिपुदारकारं ※ दासेरकरॆनॆ पॊडर्पुगिडॆ नंडॆयिसिदं ।। ६० ।।

तत्तनूभवं—

---

तीव्रगति से उनपर झपटकर, घावों से प्रवाहित रक्त को पीकर, । ५५ उस बाघिन ने उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया। लेकिन वे (मुनिवर) उस पीड़ा को सहते रहे। उससे उत्पन्न संताप को सहन करते हुए कीर्तिधर योगी मुक्ति को प्राप्त हुए और सुकौशल कैवल्य पा गए। ५६ इधर विचित्रमाला ने हिरण्यगर्भ नाम के पुत्र को जन्म दिया। विशालभूमि का स्वामी बनकर उसने अपने त्याग और शौर्य से अपनी कीर्ति को दिगंत तक फैलाया। ५७ उसकी पराक्रम-गर्जना से शत्रुराजाओं की रानियों का गर्भपात हो जाता था। उसका राज्य 'हर्षगर्भ'-सा आनन्द से भरा था। ५८ उसके पुत्र नहुष ने चार समुद्र तक के राजाओं को जीतने के पश्चात् भी (चुप न बैठकर) अपने बाहुबल की विपुलता से शत्रु-राजाओं को पानी में डुबाकर रख दिया। ५९ नहुष के ज्येष्ठ पुत्र संवास ने अपने पिता के राज्य को खड्ग रूपी अपने भुज से संभाला और शत्रु-पुत्रों का गर्वभंग करके दासी-पुत्रों के समान बना दिया। ६० उस (संवास) का पुत्र सिंहरथ—शत्रुरूपी मदमाते हाथी के समूह का संहार कर, वीरश्री का अधिपति (यजमान) बनकर, अपने सिंहरथ नाम को सार्थक

संहरिसि रिपु मदद्विप
संहतियं बीरासिरिगें वल्लभनादं
सिह पराक्रमनेंनिसिद
सिंहरय सार्वभौमविभव सनाथं ॥ ६१ ॥

आ सिंहरथन—
ऒर्वनें धन्वियॆनल् सक-
लॊर्वरॆयं कादु तन्न बाणद मॊनॆयॊळ्
मार्वलमं तविसिदनेंनें
दोर्वलमें ब्रह्मरथनॊळवितयमाय्तो ॥ ६२ ॥

लतत्तनयं—
समर मुखदॊळ् विरोधि-
प्रमुखरनॆय्दिसॆं शिलीमुखं यम मुखमं
क्षमॆयं तळॆदं चापा-
गम चतुर चतुर्मुखं चतुर्मुखनेंबं ॥ ६३ ॥

भूमंडलमं तळॆदं ✻ क्षेमास्पदमागॆ नाममहिमोन्नतियिं
हेमाचलमं मॆच्चं ✻ हेमारथं श्रुतिमुखं चतुर्मुखतनयं ॥ ६४ ॥

आ राजसुतं कीर्ति सु-
धारसदिं तण्पुवडॆदु परिपूर्णकला
धारं सकलेंदुरथं
वैरि मनोरथ रथांगमं विगटिसिदं ॥ ६५ ॥

---

बनाकर सार्वभौम राजा हुआ। ६१ उस सिंहरथ के पुत्र ब्रह्मरथ ने अयोध्या के सिंहासन को अलंकृत (सुशोभित) किया। उसके सम्मुख शत्रु के रूप में जो भी खड़ा होता उसे अपने बाणों की नोक से पराजित कर यह सिद्ध कर दिया कि संसार भर में वह एक मात्र (अद्वितीय) धनुषधारी है। ६२ उसके पुत्र चतुर्मुख ने—युद्ध में यद्यपि शत्रु-प्रमुखों को बाणों की नोक से यमयातनाएँ दीं, तथापि उनपर दया (क्षमा) दिखा कर रक्षा भी की। ६३ चतुर्मुख के पुत्र हेमरथ ने ऐसा शासन किया कि सबका कल्याण (उद्धार) होने के साथ-साथ उसका अपना नाम भी प्रसिद्ध हुआ। ६४ इसके बाद उसका पुत्र इन्द्ररथ राजा बना। उसने अपने शत्रुओं की मनोकामनाओं को वैसे ही मिटा दिया जैसे अमृत रस से ठंडक पहुँचाने वाला चन्द्र समस्त कलाओं के साथ उदय होकर चक्रवाक

आ महीभुजन तनूभव—

तेजं पुदुविल्लेंनिसि वि-
राजिसे पररराजमंडलं तन्नि नि-
स्तेजं बेत्तिरे बेळगिद-
नी जगमं भानुबिंबिनं भानुरथं ॥ ६६ ॥

मत्तं तदन्वयदोळ् मय मांधातृ वीरसेन कमलबंधु वसंततिलक कुबेरदत्त मृगारिवदमन द्विपरथ हिरण्यकशिपकर्करथ दिलीप रघुवीर प्रमुखरेंनिबरानुमरसुगळनुक्रमदिं राज्यगेय्दु केलबरमरकामिनी कचग्रहणमं केलबरमृतलक्ष्मीपाणिग्रहणमं पडेवुदुं—

धरणीप्राकारं वी- ※ र रसार्णव सेतु दानगुणभूषणदि-
क्करि धर्मरत्नरोहण ※ गिरींद्रमिक्ष्वाकु वंशमाय्तप्रतिमं ॥ ६७ ॥

आ वंशदोळ् विनीतपुरमनळ्वननरण्यनेंबरसनखिल राजकुलमणि मकुट मकरिकापत्र विचित्रचित्रित पादपीठं—

नेनेयिसुवं मान्य पुरा-
तन राज्यन्यकमनतुल बाहा बलदिं-
दनरण्यं कृतपुण्यं
मनुवंश वरेण्यनखिल भुवन शरण्यं ॥ ६८ ॥

---

पक्षियों के अलगाव (विरह) के लिए कारण बनता है। ६५ उसका पुत्र हुआ भानुरथ—जिस तरह सूर्य प्रकाश के कारण चन्द्रमण्डल निस्तेज हो जाता है, वैसे ही भानुरथ ने शत्रुराजाओं के पराक्रम को दबा दिया। ६६ तत्पश्चात् उस वंश में क्रमशः मय, मांधातृ, वीरसेन, कमल-बंधु, वसंततिलक, कुबेरदत्त, मृगारिदमन, द्विपरथ, हिरण्यकशिपु, अर्करथ, दिलीप, रघुवीर आदि प्रमुख राजाओं ने शासन किया। उनमें अनेकों ने जय-लक्ष्मी को प्राप्त किया तो औरों ने मोक्ष-लक्ष्मी को। अप्रतिम इक्ष्वाकु-वंश वीररस-रूपी समुद्रसेतु के लिए पृथ्वी का परकोटा (चहार-दीवारी) हो, दान-गुण-भूषण के लिए दिग्गज स्वरूप, धर्म-रूप रत्न के लिए रोहणगिरि बनकर चलता रहा। ६७ उस वंश में विनीतवन का शासक अनरण्य नाम का राजा हुआ जिसने समस्त शासकों के मुकुटमणि बनकर उनसे सेवा कराई—अपने शौर्य से अपने पूर्वजों का स्मरण कराते हुये, सारी पृथ्वी को अपने अधीन करके प्रसिद्ध हुआ। ६८ अनरण्य ने

अनरण्यनेंब पेसरं * जनपतिदेशदोळरण्यमिल्लेने नाना
जनपदमं पडेदु जग- * ज्जनं कुडल् पडेदनुंतें पडेदने पेसरं ॥ ६९ ॥

न्यायार्जितवित्त ध- * र्मायत्तमेनिप्प राजवृत्त तनगे-
कायत्तमागे धरेयं * जीयेनिसिदनितुदात्त चरितरुमोळरे ॥ ७० ॥

आ वसुधावल्लभन म-
नोवल्लभे रूपवति कलावति पृ-
थ्वीवधु धैर्यदोळं पृ-
थ्वीवनितेगे युवतिसवतियेने पेसर्वडेदळ् ॥ ७१ ॥

कडुचल्विं रतिगेग्गं
पडेदु विलासक्के देसिवडेद- वनिपनोळ्
पडेदु पिरियरसितनमं
पडेदळ तनयरननंतथ दशरथरं ॥ ७२ ॥

आ पृथ्वीवधुमहादेवियोलखिल पृथ्वीवल्लभं धर्मार्थविरुद्ध-
मागदंतु विषयसुखमननुभविसुत्तिर्दों दु दिवसं—
भुवन स्तुत्यपदं सहस्रकिरणं स्वर्भानुविंदं परा-
भवमं पोर्दुववोल् सहस्रकिरणं महिष्मतीवल्लभं
बवरंगेय्दु दशासनंगे रंगदोळ् सोल्तेर्वदिं क्षत्रपु-
त्रवरेण्यं जिनदीक्षेगोंडननरण्यं केळ्दना वार्तेयं ॥ ७३ ॥

---

(अपने) शासनकाल में समस्त अरण्यों (जंगलों) का निर्वाण करके अपने नाम को सार्थक बनाकर प्रजाजनों की रक्षा की । ६९ प्रजाओं से न्यायपूर्ण धन संग्रह करता हुआ अपने धर्मपूर्ण शासन से (उसने) यह सिद्ध कर दिया कि वह उदात्त चरित्र वाले शासकों में अद्वितीय है । ७० उसकी पत्नी कलावती अपने रूप और गुण के कारण ऐसी प्रसिद्ध हुई मानो वह अपने पति द्वारा शासित भूमि की सौत हो । ७१ रूप में रति को भी लजा देने वाली, (भोग) विलास में पति के अनुरूप (अनुकूल) सौंदर्यमयी ज्येष्ठरानी (कलावती) ने अनन्तरथ और दशरथ नामक दो पुत्रों को जन्म दिया । ७२ उसके (कलावती के) साथ अनरण्य संसार सुख का उपभोग इस तरह करता था (जिससे) जीवन-धर्म-कर्म के विरुद्ध न हो । ऐसे में एक दिन—उसने सुना कि विश्ववंद्य सूर्य राहु के उपद्रव से जिस तरह प्रकाशहीन हो जाता है वैसे ही रावण से युद्ध करते हुए माहिष्मती

अंतु केळ्ददुवे तनगे निर्वेगनिमित्तमागे—

केळेयं सहस्रकिरणं * तळेदं दीक्षेयनुपेक्षिसल् पदनल्ली
येळेयनपेक्षिसेनेंदा- * गळनंतरयंगे नुडिदनितननरण्यं ।। ७४ ।।

पडेदें निन्नन्ननं रक्षिसलखिल धराचक्रमं पुत्रनींबे-
ळगोंडेयं कैकोळ् धराभारमनिळिपेनगेंदंगे दंतांशु जालं
कुडिमिंचं बीरे कैयं मुगिदु नुडिदनेमातोनिर्वामार्ग-
क्कोंडसल्वें निम्म चित्तक्कॆडरिद नेलनं देव कैकोळ्वनल्लें ।। ७५ ।।

ऎंदु तन्नोडने तपंबडलोंडंबट्टु तरिसंदु नुडिवुदुमोंदुतिंगळ मगनप्प ददरथंगे पट्टंगट्टि तानुमनंतरयनुं अभयघोषभट्टारकर पादोपांतदोळ् तपंबट्टु—

अनरण्यं मुक्ति श्री * वनिता वरनादनंतनंतरयं चि-
त्तनिरोध दग्धकर्म- * धनभारननंत वीरकेवलियादं ।। ७६ ।।

आ महामहिमेयोळ्—

---

नगरी के राजा सहस्रकिरण ने पराजित होने की व्यथा से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली है। यह समाचार अनरण्य के वैराग्य का कारण बना—मित्र सहस्रकिरण ने जिनदीक्षा ग्रहण की, इस पर गौर किये बिना उपेक्षा नहीं की जा सकती; इस पृथ्वी की मैं अपेक्षा नहीं कर सकता—इस तरह सोच-कर उसने अपने पुत्र अनंतरथ से कहा। ७४ बेटे, मैंने तुम जैसे वीरपुत्र को पाया; इस भूमि पर तुम राज्य करो, श्वेत छत्र को स्वीकार करो; मैं अपने कंधे से राज्य के भार को उतार देता हूँ। इसे सुनकर चमकती बिजली को स्मरण दिलाती हूई सी दन्तपंक्तियों का प्रकाश फैलाकर, हाथ जोड़कर अनन्तरथ ने भी "हे पिताजी, उस राज्य के भार को मैं कैसे वहन कर सकूँगा जो आपके लिए भारस्वरूप प्रतीत होता है? आपके साथ मैं भी दीक्षा लूँगा"। ७५ ऐसा कहते हुए जब (अनन्तरथ ने) पिता के साथ दीक्षा ग्रहण करने का निर्णय किया तो अनरण्य अपने एक वर्ष के पुत्र को सिंहासन सौंपकर, पुत्र (अनन्तरथ) के साथ अभयघोष भट्टारक के चरणों के पास तपस्या करने लगा। अनरण्य मुक्ति-वधू का वर बना। अनन्त-रथ चित्तनिरोध से अपने पाप-कर्मों को जलाकर अनन्यवीर्य केवली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ७६ इन्द्र के उद्यान में पुष्पवर्षा होने लगी जिससे, इन्द्र के आगमन को जानकर संतुष्ट हुआ-सा वायु गंभीर (मन्द) गति से बह कर जयभेरी की सी ध्वनि करने लगा।

यस् बात्ले ऋषिले मनुष्यहरुको खुप् मन् बुझाई दिया।
पौंच्या राम् पनि कैकयी र दशरथ् जाहाँ बस्याका थियो ॥
हे मातर् ! वन जानलाइ अब ता आयौं जना तीन् चली।
बीदा जान मिलोस् मा जान्छु वनमा रस् राग्रतीभर् नली॥४५॥

आज्ञा जानमिलोस् पिताजिकि पनी जान्छू सदा खुश् म छु।
दुख्पाउनन्किभनी पिताजिकन शोक् मन्मा नला गोस्कछु ॥
कैकेयी यति बात् सुनी खुशि भई बस्तर् पुराना दिइन्।
लाया श्री रघुनाथले ति कपडा सीताजिले ता दिइन्॥४६॥

यस्ता वस्त्र म लाउँ आज कसरी भन्न्या मनैमा धरी।
लज्जाले रघुनाथका मुखविषे हेरिन् कटाक्षै गरी ॥
श्रीराम्ले मुट्टुरा गरी ति कपडा हात्मा जसै ता लिया।
त्यो देखीकन राजपत्निहरु सब् रोया तहाँ जो थिया॥४७॥

दुष्टे! आज सिताजिलाइ किन यो बस्तर् पुराना दियौ।
यस् काम्ले जति छन् यहाँ इ सबको प्राण् खैंचि ऐलै लियौ ॥
कैकेयी सित बात् वशिष्ठ गुरुले येती गऱ्याथ्या जसै।
बीदा भै रघुनाथ् चढ्या रथविषे सम्पूर्ण रोया तसै ॥४८॥

---

राम भी, जहाँ कैकेयी और दशरथ थे वहीं पहुँच गये और बोले, हे माता ! वन जाने के लिए हम तीनों जने आ गये हैं। लेशमात्र भी मन में क्रोध तथा द्वेष न रखकर आप हमें वन जाने के लिए विदा देने की कृपा करें। ४५ पिताजी भी कृपया आज्ञा दें—जिससे मैं वन चला जाऊँ। मैं सदा ही प्रसन्न हूँ। आप मन में किंचित् मात्र भी चिन्ता न करें कि मुझे कष्ट होगा। ये शब्द सुनकर कैकेयी प्रसन्न हुई और उन्हें पुराने वस्त्रादि लाकर दिये। श्रीरघुनाथ ने तो वह वस्त्र ले लिये और सीता जी ने भी ले लिये। ४६ ऐसे वस्त्र आज मैं किस प्रकार धारण करूँ। मन में यह विचार कर सीता जी ने लज्जापूर्वक श्रीरघुनाथ की ओर कटाक्ष-पूर्ण दृष्टि से देखा। श्रीराम ने उन वस्त्रों को अपने हाथ में ले लिया, यह देख सब राज-पत्नियाँ (माताएँ) रोने लगीं। ४७ अरी दुष्टे! तूने आज सीता को ये पुराने वस्त्र क्यों दिये ? तूने इस कार्य से यहाँ जो लोग हैं उन सबके प्राणों को खींच लिया है। गुरु वशिष्ठ ने कैकेयी से जैसे ही यह बात कही श्रीरघुनाथ बिदा होकर रथ में चढ़ गये। उस समय सब लोग रोने लगे। ४८ रथ में चढ़कर सीताराम वन को चल पड़े। साथ में लक्ष्मण भी गये। घर छोड़ कर उस रात्रि को रघुपति एक

सीताराम् वनमा चल्या रथ चढी लक्ष्मण् गया साथमा ।
वृक्षैका तलमा रह्या रघुपती घर् छोडि तेस् रातमा ॥
सुन्दर् एक् तमसा नदी तहिँ थिइन् तिन्का दुवै तिर् भरी ।
आयो लश्कर राम्जिका सँग बस्यो खाली अयोध्या गरी॥४९॥

फिर्नन् ता रघुनाथ सँगै फिरियला जानन् चलौंला सँगै ।
राम्लाइ छोडि यहाँ कसोगरि बसौं काहाँ बसौंला नगै ॥
यस्तो सुर् प्रभुले बुझीकन तहाँ युक्ती गऱ्या छलनको ।
प्रातःकाल भयो उठेर झटपट् मन्सुब्गऱ्याचलनको ॥५०॥

फर्की फेरि शहर् गया झइँ गरी बाटो छली राम् गया ।
फर्क्याछन् रघुनाथ् भनेर दुनियाँ सम्पूर्ण फिर्दा भया ॥
यस् रीत्ले दुनियाँ फिराइ शहरै श्री राम् वनैमा गया ।
गङ्गाका तिरमा पुगेर अब ता रथ् थाम भन्दा भया॥५१॥

सुन्दर् वृक्ष थियो ठुलो तिरविषे एक् शिंशपाको तहाँ ।
दोस्रो वास् रघुनाथको तहिं भयो त्यै वृक्षका तल्महाँ ॥
फल् फूल् लीकन भेट्नलाइ गुहजी आया बडा हर्षले ।
निर्मल् देह भयो तसै बखतमा श्रीरामका स्पर्शले ॥५२॥

---

वृक्ष के नीचे रहे। जहाँ एक सुन्दर तमसा नदी बह रही थी। उसके दोनों ओर अयोध्या को सूना कर सहस्रों जन श्रीराम जी के साथ आकर बैठे। ४९ यदि श्रीरघुनाथ जी लौट चलेंगे तो हम लोग भी साथ ही लौटेंगे। अन्यथा जहाँ राम जायेंगे वहीं साथ ही साथ हम भी जायेंगे। राम को छोड़कर हम लोग यहाँ कैसे रहेंगे। प्रभु ने उन लोगों की ऐसी भावनाओं को जानकर उनको छलने की युक्ति की, और प्रातः होते ही तुरन्त उठकर चलने की ठानी। ५० लौट कर पुनः नगर की ओर जाने का बहाना कर मार्ग बदल कर राम चले गये। राम को लौटा हुआ समझ कर समस्त जन लौट गये। इस प्रकार अयोध्यावासियों को नगर की ओर लौटा कर श्रीराम वन को चल दिये। और गंगा तट पर पहुँच कर रथ को रोक देने को कहा। ५१ नदी के किनारे एक सुन्दर शिंशपा (शीशम) का बड़ा वृक्ष था। दूसरा डेरा श्रीरघुनाथ जी ने उसी वृक्ष के नीचे डाला। वहाँ निषादराज गुह अत्यन्त हर्षित होकर फल-फूलादि लेकर भेंट करने को आये। श्रीराम के स्पर्श मात्र से ही उनका शरीर निर्मल हो गया। ५२ उन्होंने विनती की कि हे स्वामी! आज मेरा घर भी पवित्र हो जाये। हे करुणानिधान! मैं आपका सेवक हूँ,

मेरो आज पवित्र घर् पनि हवस् ख्वामित्! गऱ्याँ बिंतियो ।
सेवक् हूँ करुणानिधान! मकन होस् मारा र मर्जी छ जो ॥
यो बिन्ती सुनि भन्दछन् प्रभु तहाँ सून्यौ सखे ! आज ता ।
वन्मा जान चल्याँ मा जान्नँ घरमा याहीं रहन्छू म ता॥५३॥

कौनै फल् फुल् खानु छैन अरुले केही दिउन् तापनि ।
भन्न्या यो मनमा छ थाम्छु मनको आफ्नू प्रतिज्ञा भनी ॥
मेरै हो तिमि राज्य जो छ उ पनी मेरै छ भन्दा भया ।
बर्को दूध घसी जटा मुकुट झैं पारेर बाँद्धा भया ॥५४॥

जल्पान् मात्र गरी सिता र रघुनाथ् कुश्का शयन्मा गया ।
लक्ष्मण्का सँगमा रही गुह पनी रात्भर् खडा भै रह्या ॥
सीताराम् फकतै कुशासनविषे देख्या सुत्याको तहाँ ।
साह्रै ग्लानि भयो बहुत् गुहजिको शोक् बढ्न गो मन् महाँ॥५५॥

भन्छन् लक्ष्मणलाइ भाइ ! फजिती खुप् कैकयीले दिइन् ।
राजालाइ वशमा गरेर बहुतै हुर्मत् प्रभूको लिइन् ॥
लक्ष्मण् बात् सुनि भन्दछन् गुहजिको दिल्भित्र ठण्डा गरी ।
लाग्या सुन्न पनी तहाँ गुहजिले तन्मन् वचन् सब् धरी॥५६॥

दाता को छ यहाँ इ दुःख सुखको फल् मिल्छ सब् कर्मको ।
दिन्छन् भन्नु कुबुद्धि हो नभन यो नाश् हुन्छ सब् धर्मको ॥

---

आप मुझ पर कृपा करें और जो इच्छा हो आज्ञा करें। यह विनती सुनकर राम बोले—सुनो सखे! आज तो मैं वन जाने के लिए चला हूँ। मैं घर नहीं जा सकता, यहीं रहूँगा। ५३ मुझे फल-फूल नहीं खाना, चाहे कोई कुछ भी दे। यही मन में है, अतः मन की इस प्रतिज्ञा का पालन कर रहा हूँ। तुम मेरे ही हो, राज्य त्यागना भी मेरी ही इच्छा है। ऐसा कहकर राम ने बरगद के दूध को लगा कर जटाओं को मुकुट के समान बनाकर बाँध लिया। ५४ केवल जलपान करके ही सीता और राम कुश की शय्या पर विश्राम करने गये। गुह भी रात भर लक्ष्मण के साथ खड़े रहे। सीता और राम को कुशासन मात्र पर शयन करते देख गुह जी को अत्यधिक ग्लानि हुई और उसके मन में अत्यन्त दुःख हुआ। ५५ वे लक्ष्मण से बोले—हे भाई! कैकेयी ने आपको भी अत्यन्त कष्ट दिया। राजा को वशीभूत कर प्रभु को अपमानित किया। यह सुन कर गुह को शान्त कर लक्ष्मण कहने लगे और गुह भी

कर्ता हूँ पनि भन्नु छैन अभिमान् जन्ले न गर्नू कहीं।
कर्मैको फल भोग मिल्छ तिमिले यो बुझ्नु जाहाँ तहीं ॥५७॥
धीरा भै रहनू विपत्ति सहनू कस्तै परून् तापनि।
कैले मोहविषे नपर्नु जनले माया छ संसार् भनी॥
यस्तै बात् सुनि रात् बित्यो गुहजिको राम्का नजीक्मा रही।
गङ्गा तर्न हुकूम् भयो प्रभुजिको ताहाँ उज्यालो भई ॥५८॥
गंगे ! आज म जान्छु घोर वनमा केवल् नमस्कार् गरी।
फिर्दामा म पुजा अवश्य गरुँला सामग्रि ठूलो गरी॥
यस्तो बिन्ति गरी सिता पतिजिको साथै चलिन् पार् तरी।
आज्ञाले घरमा फिर्‍यो गुह पनी भक्ती मनैमा धरी ॥५९॥
गंगा पार् तरि मिर्ग मारि पकुवा तारेर खाया तहाँ।
तेस्रो वास् रघुनाथको तहिं भयो एक् वृक्षका तल्महाँ॥
चौथो वास् रघुनाथको हुन गयो आश्रम् भरद्वाजको।
राम्ज्यूको ऋषिले गर्‍या स्तुति तहाँ सुर्जानिकाम्काजको॥६०॥

---

तन-मन से उनके वचनों को सुनने लगे। ५६ सुख-दुख का दाता यहाँ कोई नहीं है ? वास्तव में सुख-दुख के रूप में यह सब कर्मों का फल प्राप्त होता है। कहना मूर्खता है, न कहने से सब धर्म का नाश होता है। मैं कर्ता नहीं हूँ यह कहना ही उचित है। किसी को भी अभिमान नहीं करना चाहिए। तुम यही जान लो कि इस संसार में कर्मों का ही फल भोग करने को मिलता है। ५७ कैसी भी विपत्ति आ जाय धैर्य-पूर्वक सहन करना चाहिए। संसार को माया रूपी जान कर कभी भी मोह के वश में न पड़ना चाहिए। राम के निकट बैठ ऐसी बातें सुनते हुए गुह की रात बीती। उजाला होने पर गंगा पार करने के लिए प्रभु की आज्ञा हुई। ५८ "लौटते समय पर्याप्त सामग्री लेकर मैं अवश्य पूजा करूँगा। हे गंगे! आज तो मैं केवल नमस्कार कर घनघोर वन को जाती हूँ।" ऐसी विनती कर सीता अपने पति के साथ गंगा जी को पार कर चली गईं। आज्ञा पाकर गुह भी मन में भक्ति-भाव धारण कर घर लौट गये। ५९ गंगा के पार आकर गुह ने मृग का शिकार किया और उसी का भोजन किया। श्रीरघुनाथ का तीसरा पड़ाव वहीं एक वृक्ष के नीचे पड़ा और चौथा पड़ाव भरद्वाज ऋषि के आश्रम में हुआ। कार्यों के विस्तार को समझ कर ऋषि ने रामजी की स्तुति की। ६० पाँचवें दिन मार्ग-प्रदर्शन के लिए ऋषिकुमारों को साथ में

पाँचौंदिन् ऋषिका कुमार् सँगलिया बाटो बताउन् भनी ।
राम्ज्यूलाइ यमुनाजितारितिकुमार् साँझमा त फर्क्या पनि ।।
सीताराम् पनि चित्रकूट् पुगि गया वाल्मीकि बस्थ्या जहाँ ।
वाल्मीकीकन दण्डवत् गरि बहुत् आनन्द मान्या तहाँ।।६१।।

वाल्मीकीकन भन्दछन् रघुपती क्यै दिन् रहन्छू यहाँ ।
कुन् जग्गा बढिया छ सब् तरहले होला सुविस्ता कहां ।।
सून्या वाल्मिकिले मनुष्य सरि भै राम्ले गऱ्याका कुरा ।
सोही माफिक विन्ति बात् पनि गऱ्या वाल्मीकि छन् ज्ञन्पुरा।।६२।।

जान्दैनन् महिमा बडा ऋषि पनी जस्का त एक् नामको ।
यस्ता हौ रघुनाथ् ! हजुर्कन यहाँ क्या काम् असल् ठामको ।।
सज्जन्को हृदयै छ घर् हजुरको अच्छा बहुत् फेर् कहाँ ।
विस्तार् एक् सुनिबक्सनू पनि हओस् बिन्ती म गर्छू यहाँ।।६३।।

व्याधा हूँ अधिको म सप्तऋषिको निर्मल् कृपाले गरी ।
वाल्मीकी भनि नाम् चल्यो जब जप्याँ राम्नाम उल्टा गरी ।।
उल्टै नामकि ता छ यस्ति महिमा विस्तार धेर् क्या कहूँ ।
गंगाका र इ चित्रकूट गिरिका बीच्का जगामा रहू।।६४।।

लिया । रामजी को यमुना पार करवा कर वे ऋषिकुमार संध्या तक लौट भी आये । सीता-राम भी चित्रकूट, जहाँ बाल्मीकि रहते थे, पहुँच गए और बाल्मीकि मुनि को दण्डवत कर अत्यन्त आनन्दित हुए । ६१ कुछ दिन वहीं रहने की इच्छा प्रकट करते हुए रघुपति बाल्मीकि से कहते हैं—कौन-सा स्थान सर्वप्रकार से सुविधापूर्ण एवम् उत्तम होगा । मनुष्य की भाँति राम द्वारा कही गई बात को बाल्मीकि मुनि ने सुना । और उसी प्रकार विनय-पूर्ण वार्ता की । क्योंकि बाल्मीकि तो पूर्ण ज्ञानी थे । ६२ हे रघुनाथ आप तो ऐसे हैं कि जिनके कार्य की महिमा को ऋषि नहीं समझ सकता । आपके लिए उत्तम स्थान की क्या आवश्यकता है ? सज्जनों का हृदय ही आपका आगार है, इससे बढ़कर उत्तम स्थान आपको और कहाँ मिलेगा । मैं एक बात विस्तार-पूर्वक कहता हूँ, आप श्रवण करने की कृपा करें । ६३ मैं किसी समय एक बहेलिया था । सप्तर्षियों की असीम कृपा से जब राम-नाम को उलटी ओर से जपना आरम्भ किया तब बाल्मीकि के नाम से प्रख्यात हुआ । उलटे नाम की ऐसी महिमा है कि और अधिक क्या कहूँ । आप गंगा तथा चित्रकूट पर्वत के मध्य के स्थल में निवास करें । ६४ बाल्मीकि ऋषि के वचनों को सुन कर प्रभु

वाल्मीकी ऋषिका वचन् सुनि बहुत् खुश् भै जगन्नाथ् गया।
गंगाका र ति चित्रकूट गिरिका बीच् पारि बस्ता भया ॥
गंगा देखि सुमन्त्र फर्कि दशरथ् जाहाँ बस्याका थिया।
ताहाँ जल्दि गयेर जो छ समचार् बिल्कुल् सुनाई दिया ॥६५॥

बर्को दूध घसी जटा मुकुट झैं बाँध्या दुवै भाइले।
फिर् लौ जा भनि यो हुकूम् तहिं दिया राम्ले सितामाइले ॥
गंगा पार् रघुनाथ् गया नजरले हेर्दा कठिन् भो तहाँ।
छोड्याँ देख्न जसै रुँदै रथ लिई दौडेर आयाँ यहाँ ॥६६॥

सेवा बिन्ति गरेस् भनी हुकुम भो लक्ष्मण् सिता रामको।
हाम्रो शोक् रतिभर् कदापि नगरुन् हूँदैन शोक् कामको ॥
यस्ता बात् गरि राम् गया भनि सबै विस्तार् सुनाया जसै।
कौसल्या दशरथ्जिलाइ रिसले वाक्वाण् बजारिन् तसै॥६७॥

वाक्शर्ले अति ताप् भयो र दशरथ् भन्छन् मलाई कति।
भन्छ्यौ मर्न बखत् यसै हुन गयो छाड्यो शरीर्ले गति ॥
ऐले मर्छु सराप् पनी छ तिमिले खुप् पुत्र शोक्ले गरी।
ज़स्तै हामि मर्‍यौं उसै गरि मर्‍या ठूलो विपत्ती परी ॥६८॥

---

अत्यन्त हर्षित हुए और जगन्नाथ (श्रीराम जी) चले गए तथा गंगा के किनारे चित्रकूट पर्वत के मध्य में निवास करने लगे। गंगा के तट से सुमंत्र भी राजा दशरथ के पास लौट आए और उनको सभी समाचार सविस्तार सुनाया। ६५ बरगद का दूध मल कर दोनों भाइयों ने अपनी जटाओं को मुकुट सदृश बाँधा। फिर उसी समय राम और सीता ने मुझे लौटने की आज्ञा दी। गंगा पार जाते हुए श्रीरघुनाथ को देखना मेरी इन आँखों के लिए कठिन हो गया। उनके आँखों से ओझल होते ही रथ लेकर रोते हुए दौड़ता हुआ यहाँ आया हूँ। ६६ लक्ष्मण, सीता तथा राम की यह आज्ञा हुई है कि हमारी ओर से सेवा विनती कहना और कहना कि हमारे लिए किंचित मात्र भी शोक न करें। शोक किसी अर्थ का नहीं होता। सुमंत्र ने इस प्रकार की बातों से जैसे ही राम-गमन के विषय में विस्तृत हाल सुनाया, वैसे ही कौशल्या ने दशरथ जी पर क्रोधवश बाग्वाणों का प्रहार किया। ६७ दशरथ अत्यन्त दुःखित हो बोले कि मुझे कहाँ तक कहोगी। मेरा शरीर भी गतिहीन हो रहा है और मेरे मरने का समय आ गया है। मैं अभिशापित भी हूँ कि पुत्र के अतिशोक से व्यथित हो कर ही मुझे मरना है "जिस प्रकार हम मर रहे हैं उसी प्रकार घोर विपत्ति

येती एक तपस्विले अघि सराप् जो दी गयाथ्या मरी ।
तिन्को तेहि सरापको फल मिल्यो ठीक् आज उस्तै परी ।।
सब् विस्तार सरापको कहिसकी हा राम ! सीता गरी ।
प्राणै त्याग् दशरथ्जिले जब गऱ्या खलबल् पऱ्यो तेस्घरी।।६९।।
प्रातःकाल भयो वशिष्ठ गुरु झट् मन्त्री लि दर्बार् गया ।
तेल्माथी दशरथ्जिलाइ धरि फेर् छोरा झिकाई लिया ।।
चाँडै आउनको वशिष्ठ गुरुको आज्ञा छ भन्न्या सुनी ।
दूतैका सँग लागि भाइकन ली आया भरत्जी पनि ।।७०।।
कैकेयी सित भेट् भयो भरतको सोध्या पिता छन् कहाँ ।
सद् वृत्तान्त गरी भरत्कन त सब् विस्तार् सुनाइन् तहाँ ।।
सून्या शोक् मनमा पऱ्यो भरतको साह्रै रिसाया पनि ।
पापी हौ तिमी कुम्भिपाक् नरकमा भोग् गर्न जाउली भनी।।७१।।
कैकेयीकन गालि दीकन तहाँ दुःखी बहूतै भया ।
कौसल्याजि जहाँ थिइन् तहिं रुँदै धाउँदै भरत्जी गया ।।
हे मातर् ! मनमा कदापि नपरोस् मत् छैन मेरो रति ।
पाप् लागोस् कछु मत् भया गुरुजिलाइ काटेर माऱ्या जति।।७२।।

---

से व पुत्र-शोक से तुम भी मरोगे।" ६८ कुछ समय पूर्व एक तपस्वी मुझे यह श्राप दे कर मरे थे। उसी श्राप का फल मुझे आज इस प्रकार से प्राप्त हुआ है। श्राप के विषय में विस्तारपूर्वक कह चुकने के बाद, 'हे राम! हे सीता!' कहते हुए दशरथ जी ने जब प्राण त्याग किये उसी समय रनिवास में खलबली मच गई। ६९ प्रातः होते ही गुरु वशिष्ठ तुरन्त मन्त्री को लेकर दरबार में गए। दशरथ जी को वहीं रख कर फिर सबको बुलवाया। गुरु वशिष्ठ के तुरन्त आने के आदेश को समझ कर दूत के संग भाई को लेकर भरत जी भी आए। ७० भरत की भेंट कैकेयी से हुई। उससे उन्होंने पिता के विषय में पूछा कि वे कहाँ हैं। कैकेयी ने सब समाचार सविस्तार सुनाया। यह सब सुन कर भरत को महान् शोक हुआ। वे अत्यन्त क्रोधित हुए और बोले कि तुम पापिन हो, तुम कुम्भीपाक नरक का दुःख भोग करोगी। ७१ कैकेयी को धिक्कार कर भरत अत्यन्त दुखित हुए और रोते, विलाप करते हुए कौशल्या के पास गए और बोले, हे माता! मेरे मन में कदापि कोई छल नहीं, और यदि हो तो मुझे गुरुजी को बध करने के समान पाप लग जाये। ७२ जब यह विनती करके भरत अत्यन्त विलाप करके रो रहे थे उसी समय गुरु वशिष्ठ

बिन्ती यो गरि दुःखमा परि विलाप् गर्थ्या भरत्जी तहाँ ।
मन्त्रीवर्ग समेत् बशिष्ठ गुरुजी पौंच्या नजीक्मा तहाँ ॥
देख्या शोक भरत्जिको र गुरुले पीता बित्याछन् भनी ।
शोक् गर्नू बढिया त छैन किन शोक् गर्छौ महाराज् ! भनी॥७३॥

नाना तत्त्व कही तहाँ भरतको सब् शोक् गुरूले हऱ्या ।
सब् आज्ञा गुरुको लिई भरतले काम्काज् पिताको गऱ्या ॥
राजाको किरिया जसो गरि सक्या दान्को असङ्ख्यै गरी ।
तेस् बीच्मा मनले विचार् भरतले राख्या बहुत् शोक् गरी॥७४॥

माता मेरि त राक्षसी सरि भइन् इन्का नजीक्मा यहाँ ।
बस्नू योग्य अवश्य छैन अब ता जान्छू प्रभू छन् जहाँ ॥
यस्तो चित्त थियो तहाँ भरतको इन्को छ यो मन् भनी ।
मालूम् ता गुरुमा थियो तरपनी भन्छन् उचित् हो भनी॥७५॥

बाबाको छ हुकुम् यहाँ भरतले राज् गर्नु, राम्ले गई ।
चौधै वर्ष तलक् बसून् वनविषे मानो मुनीश्वर भई ॥
सीता राम् यहि बातले वन गया याहाँ हजूर्ले पनि ।
गादी चढ्नुहवस् हुकूम् दिनुहवस् यो राज्य मेरो भनी॥७६॥

यस्तो बिन्ति गरी वशिष्ठ गुरु चुप् जस्सै रह्याथ्या तहाँ ।
उत्तर् जल्दि दिया तहाँ भरतले क्या गर्छु यो राज् यहाँ ॥

---

सभी मंत्रिगणों सहित वहाँ पहुँच गए । भरत जी को शोकाकुल देख गुरु ने पिता की मृत्यु की सूचना दी । वे बोले, शोक करना ठीक नहीं, आप व्यर्थ ही शोक क्यों करते हैं । ७३ अनेक प्रकार के तत्वों का ज्ञान दे कर गुरु ने भरत के शोक को शान्त किया । गुरु की आज्ञा लेकर भरत ने पिता का क्रियाकर्मादि किया । जैसे ही राजा का क्रिया-कर्म समाप्त हुआ वैसे ही असंख्य दान-पुण्य आदि किए । उसी बीच भरत ने शोकाकुल हो कर मन में विचार किया । ७४ मेरी माता तो राक्षसी तुल्य है । इसके समीप रहना अवश्य ही उचित नहीं है, अतः अब जहाँ प्रभु हैं वहीं जाता हूँ । गुरु को विदित था कि भरत के मन में ऐसा ही विचार था जो उचित ही था । ७५ पिता (दशरथ) की आज्ञानुसार भरत को यहाँ राज्य करना है और राम को चौदह वर्ष तक वनों में मुनियों के रूप में रहना है । सीता-राम इसी कारण वन को गए । अतः आप राजगद्दी पर बैठ कर, 'यह मेरा राज्य है' कह कह कर राज्य करें । ७६

मुक्वरिख गंज पुशिरांविख ग़रीबन ।
सौनस तल ग़रक़ सांपुन्य सांरी बरह्मन ।। १५ ।।

बालकाण्ड समाप्त

लगे कि सर्वशक्तिमान् भगवान् हमारे दुःख दूर करें तथा नये राजा को मुबारिकबाद हो। ख़ज़ानों के द्वार ग़रीबों के लिए खोल दिये गये तथा सारे ब्राह्मण सोने तले डूब गये (असीम दान पाकर स्वर्णमय हो गये) ।। १५ ।।

।। बालकाण्ड समाप्त ।।

# अजोद्या काण्ड

## राजतिलक

जमा सांरी सपुन्य अरकानि दोलत ।
तिमव कंर सारिवुय राजस सुतिन कथ ।।
दोंपुक नगरस संमिथ खिर खण्ड ख्यावव ।
नंविस राज़स पलंगस बेंह नावव ।।
मुक़रर गव पगा सुबहन प्रबातन ।
संमिथ यिन रामुचन्दुरस ताज पुशरन ।।
ब्रहस्पत सिरियि बोंद येंलि गोस केन्दुरस ।
दपान नारद रेंश्य वोंन रामुचन्दुरस ।।

# अयोध्या काण्ड

## राजतिलक

सभी सभासद् जमा हो गये तथा उन सभी ने राजा के सामने प्रस्ताव रखा कि सारे नगर को इक्ट्ठा कर खीर और मिठाई खिलाइए और नये राजा को पलंग (सिंहासन) पर बिठाइए। मुक़र्रर यह हुआ कि कल सुबह प्रभात-वेला में सभी इक्ट्ठे होंगे और रामचन्द्र को ताज सौंपा जायेगा। बृहस्पति, सूर्य और बुद्ध एक ही केन्द्र में आ गये और नारद ऋषि ने रामचन्द्र से

महाराजा नरायन छुख च़ु ज़ामुत ।
ख़बर छय ना च़ुह क्याह छुख करनि आमुत ।। ५ ।।

लीला

च़ेतनो हरु हरु लग सौंरुने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार
मूह रच़ि मनस क्याह सनु सने
बेगानु गोंज़रुथ पननुय यार
अमरेथ त्राविथ वेह लोंग सु ख्यौने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ।। १ ।।

कमन व्यसतारन लोंग खसुने
यश क्या गन्ज़ुरुथ यिम छिम द्यार
बेंयि यिम शुर्य बाच़ छिम ब्रोंठकने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ।। २ ।।

काया दोंहु अकि लगियो प्यौने
च़े कोनु मनस कौरुथ व्यच़ार
अस्तु अस्तु दारस लोंगुख खसुने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ।। ३ ।।

---

कहा—महाराज, आप तो (साक्षात्) नारायण हैं, आपको नहीं मालूम कि आप क्या-क्या करने आये हुए हैं ।। ५ ।।

रे चेतन-जीव ! तू हर-हर का स्मरण कर तथा इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । तेरे मोह से युक्त मन में भला क्या समायेगा, (तूने) अपने यार (इष्ट) को बेगाना समझा (तथा) अब अमृत छोड़ ज़हर खा रहा है—रे चेतन जीव ! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । १ तू न जाने किन-किन मंसूबों को बनाता रहा । तूने यश को (अपनी उपलब्धियों को) स्थायी धन गिन लिया और बाल-बच्चों को सदा के लिए अपने पास रहने की (मिथ्या) कल्पना की—रे चेतन जीव ! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । २ तेरी काया एक दिन गिरने लग जायेगी—यह विचार तूने मन में क्यों नहीं किया ? तू धीरे-धीरे मृत्यु के द्वार की ओर बढ़ रहा है—रे चेतन जीव ! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । ३ तूने माया (के प्रकोप) को न जाना । रे अन्धे ! तू

ज़ांनिथ तु माया पानय नने
ह्रा अनि कोनु गोख ख़बरदार
आख तय नोंनुय गछ़ख न्यथुनोंनुय
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ॥ ४ ॥

समुयस वातिथ प्यख च़ु वुने
अफ़सोस ख्यख अदु तोंलि क्याह् तार
सोंथ सूरिथ तु हरदु आख नटुने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ॥ ५ ॥

दयि दयि सोंरान यिम मंज़ मने
मोंखु त्रांविथ बोंड़ छु ह्रदयुक सार
ह्रदयिकि कोचि फेर बा हनि हने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ॥ ६ ॥

शमित पानय आसय वनय
गाश डीशिथ च़लि अन्दुकार
गटु दूर गंछ़िथ प्रकाश नने
असार ज़ान ज़न ब्रम समसार ॥ ७ ॥

---

(इससे) ख़बरदार (भी) क्यों न हुआ ? तू नंगा आया था और नंगा ही जायेगा—रे चेतन जीव! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । ४ समय आने पर तू (जब) सम्भल जायेगा तो अफ़सोस ! उस समय तेरा कोई निस्तार न होगा । तूने बसंत (जवानी) का मज़ा तो ले लिया किन्तु शरद् (बुढ़ापे) में काँपने लग गया—रे चेतन जीव! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । ५ मात्र मुँह पर (दिखाने के लिए भगवान् का) नाम न लेकर, जो मन में उसका स्मरण करते हैं—वही हृदय के पारखी हैं । (तू भी) हृदय के प्रत्येक कूचे में तल्लीन होकर फिर—रे चेतन जीव ! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान । ६ मैं (अपनी इच्छाओं) का शमन कर तुझसे कह रहा हूँ कि तब प्रकाश के दर्शन होंगे और अन्धकार दूर हो जायेगा—रे चेतन जीव ! इस भ्रमपूर्ण संसार को असार जान ॥ ७ ॥

कीकी हुन्द छल

त्र रूशिथ बेहतु लोलस पोन्य त्राविथ ।
यियि कुस योत नियी कुस मनु नाविथ ।।
दोपुस तंम्य नारदो बोज़ख त्रु पानय ।
सपनि अज़ राथ क्युथ क्याह तां वकानय ।।
यिहंय कथ येलि यन्दुराज़स निशि वात्र ।
अंनिन तंम्य सरस्वती सूज़ुन तमी रात्र ।।
दोपुन तस वुन्य त्रु गछ कीकियी फिर मन ।
त्युथुय युथ रामु चंदुरस छुनि कंड़िथ वन ।।
यंहय शेछ्य आस यिछ कीकियी डोल मन ।
वनुन राज़स ह्योतुन राज़न थोवुस कन ।। ५ ।।

दपान येलि राज़ु गव कीकियी निश रात ।
दोपुस तमि दप मे मा मोंगमय त्रे केंह ज़ात ।।
मंगय केंह्छा मे दिनुकिन्य ती गछेम द्युन ।
दोपुस तंम्य तोरु द्युतमय वुन्य गछेम न्युन ।।
अथस प्यठ वास दिथ कोरनस बन्दानय ।
त्रु योदवय ज़ुव मंगख पुशरय बु पानय ।।

कैकेयी का छल

तू प्रेम में कठोरता लाकर (उस पर पानी फेंककर) भले ही यहाँ रूठ कर बैठी रह, पर यहाँ तुझे मनाकर ले जाने के लिए कौन आयेगा ? इस पर उसने (कैकेयी ने) कहा—नारदजी, आप को स्वयं मालूम पड़ जायेगा, आज रात कुछ होकर रहेगा—ऐसा मुझे लग रहा है। यह बात जब राजा इन्द्र के पास पहुँची तो उसने सरस्वती को बुलवाया और उसी रात उसे (अयोध्यापुरी) भेजा। उसने (इन्द्र ने आगे) कहा—तू जा और कैकेयी का मन फेर जिससे वह रामचन्द्र को वन भिजवा दे। बस इतना ही कहना था कि कैकेयी का मन डोल (फिर) गया, और वह राजा से अपना मंतव्य कहने के लिए तैयार हो गई। ५ कहते हैं जब रात को राजा कैकेयी के पास गये तो उसने (कैकेयी ने) कहा—कहिए, आज तक मैंने (आप से) कुछ भी नहीं मांगा, यदि अब मैं कुछ माँगू तो देने की इच्छा से (अनायास ही) वह मुझे मिलना चाहिए। (इस पर) उसने (राजा ने) कहा—जा, दे दिया—अब माँग। हाथों में हाथ लेकर (राजा ने आगे)

छु क्याह चीज़ा मंगख आसिथ दिमय ना ।
दपख यौत युन बु तौत बुथिकिन यिमय ना ॥
वुछिव त्रिय बावुकिन येलि दोरुनस कन ।
त्युथुय ल्युथ गोस युथ करि हेस नु दुश्मन ॥ १० ॥

दपन कीकी स्यठा तस आस दिल ख़्वाह ।
दोंपुस तमि रामु चन्दुरुन राज छुम दाह ॥
कसम छुय ना ख्योमुत गछि वादु पालुन ।
मेंथुर रछुन शेंथुर गछि मूलु गालुन ॥
बरुथ गछि राजु आसुन राम वनवास ।
दपन कीकी वुछिव वादुबार क्याह आस ॥
त्युथुय बूज़िथ वंसिथ प्यव राजु बरख़ाक ।
कोंरुन जामन तु जानस सारिसुय चाक ॥
ति बूज़िथ राजु बुथ्य किन्य तति पथर प्यव ।
त्युथुय युथ सारिवुय गंज़रुख सपुन शव ॥ १५ ॥

वौदुन वाराह दोंपुन तस क्याह यि कोंरथम ।
जिगर चोंटथम शिकम किथु नारु बोंरथम ॥

कहा, यदि तू जान तक माँगेगी तो मैं वह भी स्वयं पेश करूँगा । (भला) ऐसी कौन-सी चीज़ है जो तू माँगेगी और मेरे पास होते हुए भी तूझे न दूँ । तू मुँह के बल भी कहीं चलने को कहे तो मैं चला जाऊँगा । जब कैकेयी ने देखा कि राजा त्रिया-जाल में पूर्णतया फँस चुका है तो उसने उसकी (राजा की) ऐसी दुर्गति की जो दुश्मन भी नहीं कर सकता था । १० कहते हैं, कैकेयी उसकी (राजा की) बहुत ही लाड़ली रानी थी और उसने कहा--रामचन्द्र का राजा होना मेरे लिए दाह (जलन) समान हो रहा है । आपने कसम खाई है ना, अब वायदे का पालन अवश्य होना चाहिए तथा मित्र की रक्षा कर शत्रु को समूल नष्ट कर देना चाहिए । भरत राजा हो तथा राम को वनवास मिले । कहते हैं, देखिए, कैकेयी को वायदे की पूर्ति के लिए यह क्या सूझी जिसे सुनते ही राजा अपनी जान व वस्त्रों को चाक करते हुए गिर पड़ा । वह मुँह के बल नीचे गिर पड़ा और सभी को लगा जैसे वे शव हो गये हों (मर गये हों) । १५ वह खूब रोया और कैकेयी से कहने लगा कि यह तूने क्या किया जो मेरा जिगर चीर डाला और मेरा अन्तस् अग्निमय कर दिया । तुझे तो रामचन्द्रजी की ख़ूब चाह थी, यह तूने क्या किया और क्या कहा--अब कौन-सा चारा

च्रे आंसुय रामुचन्दुरुन्य माय वाराह ।
कौरुथ ल्युथ क्या वोनुथ यथ क्या छु चारा ।।
यि दोंपनय ज़िन्दय बरथा च्रु ज़ालुन ।
मथुस अमरेथ च्रु बंरगन मूलु गालुन ।।
यि कंम्य दोंपनय ज़िन्दय दिस दोंन अँछिन तीर ।
मे छुम यी शाप पानस छुम नु तकसीर ।।
अमा करतम ख्यमा सोज़न नु वनवास ।
मरय तस रोंस्त वोंन्य करतम तम्युक पास ।। २० ।।
यि केंछा छुम ति सोरुय दिमु बरुथस ।
मे छुम रामुज़ुव बस छुम त्युतुय बस ।।
वंज़ानस ज़ुव वन्यानस वारु वारुह ।
जिगर च्रोंटथम गंयम वांलिजि पारुह ।।
म कर यिछ्‌ बाज़्य यथ मंज़ क्याह नफ़ा छुय ।
मे बूज़ुय युथ नु वोंन्य बेंयि कांह ति बोज़ि ।।
च्रु नय बोज़ख दोंपुस तमि पान मारय ।
पगाह नेरय न्यबर कथ रज़ि खारय ।।
शुत्रुगोंन बरथ मातामाल गांमुत्य ।
गंयख शेंछ्य तिम ति आसन तोरु आमुत्य ।। २५ ।।

(उपाय) हो सकता है। यह तुझसे किसने कहा (सिखाया) कि जीते जी (अपने) भर्त्ता को जला डाल तथा पत्तों में अमृत लगाकर मूल को नष्ट कर डाल। यह तुझसे किसने कहा कि तू (मेरी) दो आँखों में तीर फेंक, (खैर) तेरा इसमें कोई कसूर नहीं है है--यह मुझे शाप का फल मिला है*। (मैं याचना कर रहा हूँ) मुझे क्षमा कर। राम को वनवास न दिला--उसके बिना तो मैं मर जाऊँगा, ज़रा उसका पास (लिहाज़) कर। २० मेरे पास जो कुछ भी है, वह मैं सब भरत को दे दूँगा--मेरे तो, बस, राम ही सब कुछ हैं, बस, वही सब कुछ हैं। (राजा ने अपनी ओर से) जी-जान अर्पण कर (बहुत अनुनय-विनय कर) धीरे-धीरे उससे (कैकेयी से) कहा--तूने मेरा जिगर छलनी कर दिया और दिल के टुकड़े कर दिये। तू ऐसा षड्यन्त्र न रच, इससे (तुझे) क्या लाभ (नफ़ा) होगा? (यह बात) केवल मैंने (अभी तक) सुनी है, कोई दूसरा इसे अब न सुने। (इस पर) कैकेयी ने कहा--यदि आप मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मैं आत्मदाह

* संकेत श्रवण-प्रसंग की ओर है।

यिहय कथ गॆयि न्यबर सीरस ननॆर गव ।
वदान आव रामुजुव राज़स परन प्यव ॥
मॆ दिम रॊख़सत पलंगस बॆह च़ु पानु ।
वदनि लॊग मॊख्तु ऒश ज़न दानु दानु ॥
दप्योस राज़न पलंगस बॆह वन्दय रथ ।
दॊपुस तॆम्य शाफ बदलुन छुम नु ताक़त ॥
ह्यॊतुन रॊख़सत बेस वनवास सॊपनुन ।
सूतॆन लॆखिमन ह्यॊतुन गॆयि जंगलस कुन ॥
गरज़ुन ह्यॊत लॆखिमनन कॊंप्यव आकाश ।
दॊपुन राज़स रॆटिथ राजस करस नाश ॥ ३० ॥

दॊपुस तॆम्य रामुचन्द्रन बॆह शमित रोज़ ।
वनय वॊपदीश अद्यात्मुक कनव बोज़ ॥
ति बूज़िथ मॊगी आसी श्रावुनुन ताफ ।
ति बूज़िथ पॊन्य लगी सोरुय च़ली पाफ ॥
सॊरुन मन च़ु तु वुनिक्यन दफ गछ़व वन ।
यछ़ा गॆज़राव यिछ़ुय च़ंचल मु सॊपन ॥

---

कर लूँगी तथा नगर-भर में आपके व्रत-पालन की पोल खोल दूँगी । शत्रुघ्न और भरत ननिहाल गये हुए हैं, उनको मैंने बुलावा भेजा है, वे आ ही रहे होंगे । २५ (आख़िर) यह बात बाहर गई (फैल गई) और रहस्य का उद्घाटन हो नया । रामचन्द्रजी रोते हुए आये, राजा को प्रणाम किया और कहा मुझे रुख़सत कीजिए, सिंहासन पर आप स्वयं बैठ जाइए और वे (रामचन्द्र जी) मोतियों के दानों के समान आँसू बहाने लगे । राजा ने (बहुत) कहा--(मेरे लाल ! ) तुझ पर बलिहारी जाऊँ, तू सिंहासन पर बैठ । किन्तु उन्होंने उत्तर दिया--शाप (वचन) को बदलने की मुझमें ताक़त नहीं है । रुख़सत लेकर उन्होंने वनवास का भेस धारण कर लिया तथा अपने साथ लक्ष्मण को लेकर जंगल की ओर चल पड़े । (भाई के प्रति ऐसा अनाचार होते देख) लक्ष्मण गर्जने लगा जिससे आकाश काँप गया । वह कहने लगा कि मैं राजा को पकड़कर इस राज-सिंहासन का (ही) नाश कर डालूँगा । ३० रामचन्द्रजी ने समझाया--शान्त हो, मैं तुम्हें अध्यात्म का उपदेश देता हूँ, उसे कानों से (ध्यान से) सुना । उसे सुनकर माघ मास की भाँति (जमे हुए) तुम्हारे चैतन्य का समस्त कालुष्य श्रावण की धूप द्वारा स्वच्छ हो जावेगा तथा पुण्य उत्पन्न होकर तेरे

च्रे यौंदवय राज बोगुन छुय न्यबर नेर।
गछ्क लंका वुछिथ राजिति निशि सीर ।।
वुछख रावुन करान क्या सौंख तु आनन्द।
रॅटिथ यमु राज़ु थोवमुत गरि कॅरिथ बन्द ।। ३५ ।।

पगाह कुस डस करि तस मरि कुहुन्दि सूत्य।
सु मरिहे कोनु तस सूत्य बेंयि मरन कूत्य ।।
सु येंलि मरि तस दपान पोशस नु यम ज़ात।
मरुन सारेंन छु अदु कस तति बचन बात ।।
मरुन मशरोव येंम्य तस रूद सोरुय।
मरुन येंम्य ज़ोन तॅम्य ज़ुव रथ खोरुय ।।
सु ज़नमस यियि नु येंम्य सॉरुय दुयी त्रॉव।
दुयी तॅम्य त्रॉव यस नाराम्य वथ हॉव ।।
दुयी त्रावुन्य छ यी मायायि ज़्युन नार।
मेंथुर ज़ानुन शेंथुर त्रावुन अहंकार ।।
दौंयुम ईशर पनुन बब मोज ज़ानुन।
त्रेंयिम गोंरु शब्द बूज़िथ वाति मानुन ।।

पापों का नाश हो जायेगा। तू मन में विचार कर तथा इस समय 'वन ही जायेंगे' ऐसा कह। इस बात को ईश्वर-इच्छा जान तथा चंचल न बन। यदि तू राज्य ही भोगना चाहता है तो (मेरे साथ) बाहर चल। लंका के राज्य-वैभव को देखकर तू अपने-आप संतृप्त हो जायेगा। तू (वहाँ) देखेगा कि रावण कैसे सुख व आनंद को भोग रहा है और उसने कैसे यमराज को पकड़कर बन्द कर रखा है। ३५ (यह सब देखने पर तुझे राज्य भोगने की इच्छा नहीं रहेगी)। (यदि हम यहाँ से न गये तो) कल उस (रावण) का नाश कौन करेगा तथा वह किसके द्वारा मारा जायेगा? वह अकेला नहीं अपितु उसके साथ और भी कितने मारे जायेंगे। कहते हैं यमराज भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता है; किन्तु (इस दुनिया में) मरना सब को है, कोई बच नहीं सकता। जिसने मृत्यु को भुलाया उसका सब-कुछ यहीं रह गया और जिसने मृत्यु को याद रखा उसका जी-जान सँवर गया। जिसने द्वैत-भावना को त्याग दिया वह (दुबारा) जन्म न लेगा (मुक्त हो जायेगा); और इस द्वैतभावना का परित्याग नारायण (भगवान्) की अनुकंपा द्वारा ही सम्भव है। द्वैत-भावना को त्यागने से (अभिप्राय है) माया को जला डालना;

पौड़ी १७

असंख जप असंख भाउ असंख पूजा असंख तप ताउ।
असंख गरंथ मुखि वेद पाठि असंख जोग मनि रहहि उदास।
असंख भगत गुणगिआन वीचार असंख सती असंख दातार।
असंख सूर मुह भख सार असंख मोनि लिव लाय तार।
कुदरति कवण कहा वीचारु वारिआ न जावा एक वार।
जो तुधु भावै साई भली कार तू सदा सलामति निरंकार ॥ १७

ईश्वर के दरबार में असंख्यों पूजापाठी और तपी-तपस्वी हैं, ग्रंथों के कंठवान् हैं, अनेक योगी हैं जो मन से उदासी प्रवृत्तियों के हैं, ऐसे भक्त हैं जो गुणी-ज्ञानी और विचारक हैं, सत्यभाषी हैं, दाता हैं, वीरपुरुष-लौहपुरुष हैं जो रणभूमि में कभी पीठ नहीं दिखाते, असंख्यों मौनवृती हैं जो एकचित्त होकर ध्यानमग्न हैं, हमारी क्या सामर्थ्य है कि हम उस ईश्वर की प्रकृति का विचार कर सकें, या उस पर बलिहार हो सकें। हे ईश्वर! जो आपको भाए वही ठीक है और आप सदैव सर्वदा स्थिर निरंकार है। १७

पौड़ी १८

असंख मूरख अंध घोर असंख चोर हरामखोर।
असंख अमर करि जाहि जोर असंख गलवढ हतिआ कमाहि।
असंख पापी पापु करि जाहि असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि।
असंख मलेछ मलु भखि खाहि असंख निंदक सिरि करहि भारु।
नानकु नीचु कहै वीचारु वारिआ न जावा एक वार।
जो तुधु भावै साई भली कार तू सदा सलामति निरंकार ॥ १८

असंख्यों मूर्ख भी इस संसार में हैं, जो अन्धकार में भटक रहे हैं। अनेक चोर और कृतघ्नी पुरुष हैं, असंख्यों ज़ोरज़ुल्म करके हुक्म चलाते हैं। जीव-हत्या करने वाले हैं, असंख्यों पापी हैं जो दिन-रात पाप करते रहते हैं। झूठ बोलनेवाले हैं जो झूठ के सहारे जीवन यापन कर रहे हैं। असंख्यों मलेच्छ गन्दे हैं जो विष्टादि खानेवाले जीवों को स्वयं खाते हैं, असंख्यों निन्दक हैं जो निन्दा चुगली करके अपने सिर पर निन्दा का भार उठा रहे हैं। गुरू नानकदेव जी कहते हैं कि उपरोक्त सभी विचार, नीच प्रकृति के लोगों के हैं। हे प्रभू! मैं आपकी प्रकृति पर एक बार भी बलिहार होने के योग्य कहाँ हूँ? क्योंकि जो आपको भाए वही ठीक है और आप सदैव सर्वदास्थिर और निरंकार हैं। १८

पौड़ी १९

असंख नाव असंख थाव अगंम अगंम असंख लोअ ।
असंख कहहि सिरि भारु होय अखरी नामु अखरी सालाह ।
अखरी गिआनु गीत गुण गाह अखरी लिखणु बोलणु बाणि ।
अखरा सिरि संजोगु बखाणि जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि ।
जिव फुरमाए तिव तिव पाहि जेता कीता तेता नाउ ।
विणु नावै नाही को थाउ कुदरति कवण कहा वीचारु ।
वारिआ न जावा एक वार जो तुधु भावै साई भली कार ।
तू सदा सलामति निरंकार ।। १९

ईश्वर के अनेकानेक नाम हैं और वह सर्वव्यापी है। उसकी सृष्टि में अनेक प्रकार के मनुष्य भी हैं जो दूर-दूर तक सृष्टि में फैले हुए हैं; जिनकी पूरी सही गणना भी संभव नहीं। इस लिए ईश्वर को धन्य कहकर उसकी उपासना करनी है। ईश्वर ने हमारे लिए अक्षरों का आविष्कार किया है ताकि हम उसका गुणगान शब्दों द्वारा कर सकें; उसके ज्ञान के गीत गा सकें। उसका नाम, उसकी स्तुति लिख-बोलसकें और भाग्य की रेखाओं का वर्णन कर सकें। परन्तु हे प्राणीमात्र ! जिसने यह लेख स्वयं लिखे हैं, भला उस पर कुछ भी लिख सकनेवाला कौन है? वह जैसी आज्ञा करता है वैसा ही हम करते हैं। इस सारे संसार की रचना उसके नाम से ही है, उसके नाम के बिना कोई स्थान नहीं है। मैं उसकी प्रकृति अथवा रचना का वर्णन कैसे करूँ। उस पर मैं एक बार भी बलिहार होने के योग्य नहीं। जो उसे भाए, वही ठीक है और वह सदैव सर्वदास्थिर और निरंकार है। १९

पौड़ी २०

भरीऐ हथु पैरु तनु देह पाणी धोतै उतरसु खेह ।
मूत पलीती कपड़ु होय दे साबूणु लईऐ ओहु धोय ।
भरीऐ मति पापा कै संगि ओहु धोपै नावै कै रंगि ।
पुंनी पापी आखणु नाहि करि करि करणा लिखि लै जाहु ।
आपे बीजि आपे ही खाहु नानक हुकमी आवहु जाहु ।। २०

यदि हाथ पैर या पूरा शरीर ही मैला हो जाए तो उसे पानी से धोकर साफ़ किया जा सकता है, यदि कोई कपड़ा मलमूत्र से गंदा हो जाए तो उसे साबुन से धोकर साफ़ किया जा सकता है। उसी प्रकार

यदि पापकर्मों से बुद्धि मलीन हो जाए तो उसको केवल प्रभू के नाम-सिमरन से ही शुद्ध किया जा सकता है; केवल कहने से ही कोई पापी या पुण्यात्मा नहीं बन जाता। अपने-अपने कर्मों से ही लोग पापी-पुण्यात्मा बनते और अपने भाग्य-लेख बनाते हैं। कर्मों के फलों को स्वयं बोते और स्वयं भोगते हैं, और ईश्वर की आज्ञा के अन्दर ही आवागमन करते हैं।२०

पौड़ी २१

**तीरथु तप दइआ दतु दानु जे को पावै तिल का मानु।**
**सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ अंतरगति तीरथि मलि नाउ।**
**सभि गुण तेरे मै नाही कोय विणु गुण कीते भगति न होय।**
**सुअसति आथि बाणी बरमाउ सति सुहाणु सदा मनि चाउ।**
**कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।**
**कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु।**
**वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु।**
**वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु।**
**थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।**
**जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।**
**किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा।**
**नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा।**
**वडा साहिब वडी नाई कीता जाका होवै।**
**नानक जे को आपे जाणै अगै गइआ न सोहै॥ २१**

तीर्थ, व्रत, तप, दया एवं दान आदि करते समय अपने को कर्ता मानकर अहंभाव के कारण तिल बराबर भी फल प्राप्त नहीं होता है। परन्तु जिन्होंने ईश्वर की अराधना की है, उसके नाम को सुना, माना अथवा विचार किया है, उनके अन्तरमन में ही तीर्थयात्रा एवं स्नान का फल प्राप्त होता है। वे अपने मन-रूपी तीर्थस्नान से ही अपने पापों को धो लेते हैं और मान प्राप्त कर लेते हैं। 'हे प्रभू! तू ही स्वयं गुणवान् है, समस्त गुणों का स्वामी है। मेरे अन्दर तो कुछ भी नहीं है और बिना गुणों को धारण किये आपकी भक्ति नहीं हो सकती।

वह सगुण ब्रह्म ईश्वर शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप है, और सारी सृष्टि का सृजनहार है। वह कौन सा समय, स्थान, तिथि, वार ऋतु अथवा मास था जब सृष्टि का सृजन हुआ? इस भेद को बड़े-बड़े पंडित-विद्वान्

भी नहीं जान सके। यदि जानते तो कहीं न कहीं वेद-पुराणों में उसका उल्लेख अवश्य मिलता। उस समय का भेद न तो ब्राह्मणों को ज्ञात है और न ही काज़ियों को, नहीं तो वे कुरान में ही इसका उल्लेख करते; और न ही कोई योगी-जती-ध्यानी पुरुष ही इस बात को जानता है कि उस कर्त्ता ने इस सृष्टि का सृजन कब किया। अर्थात् वह कर्त्ता अकालपुरुष स्वयं ही इस भेद को जानता है कि उसने सृष्टि की रचना कब की। मैं उस अपरम्पार की क्या कह के सराहना करूँ? कैसे उसका वर्णन करूँ या क्या कह के उसको जानूँ? गुरू नानकदेवजी कहते हैं कि वर्णन तो उसका सभी करते हैं और एक से एक बढ़कर सराहना करनेवाले हैं, परन्तु किसी ने उस परमेश्वर का अन्त नहीं पाया है। उसी का किया हुआ सबकुछ है किन्तु उसके आगे अहंकारी व्यक्ति अपने अहं के कारण अशोभनीय होते हैं। २१

### पौड़ी २२

**पाताला पाताल लख आगासा आगास।**
**ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात।**
**सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।**
**लेखा होय त लिखीऐ लेखै होय विणासु।**
**नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु ॥ २२**

उस परब्रह्म परमेश्वर ने लाखों ही आकाश-पाताल बनाए हैं। एक-एक रोम में कोटिक ब्रह्मांड हैं, जो अनन्त हैं, जिनकी गणना भी नहीं की जा सकती। वेद-वेदांग भी यही कहते हैं। विश्वज्ञान की पुस्तकें बताती हैं कि विश्व के १८००० हिस्से हैं। परन्तु प्रभू का पसारा तो अनन्त है, वह सत्यस्वरूप अविनाशी है। उसका लेखा-जोखा नहीं किया जा सकता; क्योंकि लेखा केवल नाशवान् वस्तुओं का ही हो सकता है। गुरू नानक देवजी कहते हैं कि उस पूर्ण प्रभू के बड़प्पन को कौन बता सकता है, अर्थात् वह स्वयं ही अपनी पूर्णता को जान सकता है। २२

### पौड़ी २३

**सालाही सालाहि, एती सुरति न पाईआ।**
**नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि।**
**समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।**
**कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥ २३**

प्रशंसा, सराहना, स्तुति करनेवालों ने उसका अधिकाधिक गुणगान किया है, परन्तु वे उसका भेद नहीं पा सके। जैसे समुद्र के अथाह जल में अनेकों नदी-नाले जाकर मिलते हैं, परन्तु उस समुद्र की सम्पूर्णता का बोध नहीं कर पाते। अथाह समुद्र जैसी विशाल मिलकियत हो और उसमें छिपे अनन्त ख़ज़ानों का मालिक हो, जिसके पास कुबेर का ख़ज़ाना हो, वह भी उस छोटे से जीव चींटी की बराबरी नहीं कर सकता जो प्रभू-भक्ति में लीन है, अथवा उस छोटे निर्धन व्यक्ति की बराबरी नहीं कर सकता जिसके मन में ईश्वर का ध्यान है। २३

पौड़ी २४

**अंतु न सिफती कहणि न अंतु अंतु न करणै देणि न अंतु।**
**अंतु न वेखणि सुणनि न अंतु अंतु न जापै किआ मनि मंतु।**
**अंतु न जापै कीता आकारु अंतु न जापै पारावारु।**
**अंत कारणि केते बिललाहि ताके अंत न पाए जाहि।**
**एहु अंतु न जाणै कोय बहुता कहिऐ बहुता होय।**
**वडा साहिबु ऊचा थाउ ऊचे उपरि ऊचा नाउ।**
**एवडु ऊचा होवै कोय तिसु ऊचे कउ जाणै सोय।**
**जेवडु आपि जाणै आपि आपि नानक नदरी करमी दाति॥ २४**

ईश्वर की स्तुति का कोई अन्त नहीं है और उसकी स्तुति करने वाले भी अनन्त हैं। उसकी देन और कृति का भी कोई अन्त नहीं है, उसके देखने-सुनने का भी कोई अन्त नहीं है। उसके मनोभाव भी अनन्त हैं, कोई नहीं कह सकता कि उस प्रभू के मन में क्या है। उस (रचित जगत्) के आकार-विस्तार का कोई पार नहीं पा सकता। उसके अन्त को प्राप्त करने अथवा जानने के लिए कई रोते-बिललाते हैं, परन्तु उस अनन्त प्रभू का अन्त नहीं पा सकते। जितना भी उसके बारे में कहें थोड़ा है। वह ईश्वर महान्, अति महान् है, उसके रहने का स्थान और भी अनन्त है, उसका नाम भी ऊँचे से ऊँचा है। यदि कोई उसके जैसा ऊँचा हो तो उस प्रभू के बारे में जान सके; अर्थात् मनुष्य कभी भी ईश्वर इतना ऊँचा नहीं हो सकता कि उसके बारे में जान सके। सारांश यह है कि अपने बारे में वह स्वयं ही जान सकता है, और प्रभू की दया से ही यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है। २४

पौड़ी २५

बहुता करमु लिखिआ ना जाय वडा दाता तिलु न तमाय ।
केते मंगहि जोध अपार केतिआ गणत नही वीचारु ।
केते खपि तुटहि वेकार ।
केते लै लै मुकरु पाहि केते मूरख खाही खाहि ।
केतिआ दूख भूख सद मार एहि भि दाति तेरी दातार ।
बंदि खलासी भाणै होय होरु आखि न सकै कोय ।
जे को खायकु आखणि पाय ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाय ।
आपे जाणै आपे देय आखहि सि भि केई केय ।
जिसनो वखसे सिफति सालाह नानक पातिसाही पातिसाहु ।। २५

ईश्वर अवर्णनीय है। उसके बारे में पूर्ण रूपेण लिखा नहीं जा सकता। उसमें तिलमात्र भी लोभ-लालच नहीं है। उससे बड़े-बड़े योद्धा भी माँग करते हैं, और माँगनेवाले भी अनन्त हैं। कितने विकारी मनुष्य विषय-वासनाओं में फँसकर जीवन यों ही नष्ट कर लेते हैं, कितने कृतघ्नी पुरुष उसकी कृपादृष्टि से सबकुछ प्राप्त करके भी उसे भुला देते हैं और सभी पदार्थों का सेवन करते हुए भी तृप्त नहीं होते। कई दुख और दारिद्र के चक्कर में सर्वदा दुखी रहते हैं। परन्तु हे प्रभू! यह भी तेरी कृपा है, और इस कृपा का पात्र बननेवालों को सांसारिक बंधनों से मुक्ति मिल जाती है। इसके आगे और कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यदि कोई मूर्ख वर्णन करना भी चाहे, तो वही जानता है कि उसको कितनी बार मुँह की खानी पड़ती है। प्रभू स्वयं हमारी आवश्यकताओं को जानता है और उसी अनुसार हमें देता है, इस बात को समझकर वही कह सकता है जिसपर उस प्रभू ही की कृपा हो जावे। और ईश्वर जिससे अपनी स्तुति कराता है, (जो उसकी भक्ति-उपासना में उसकी प्रेरणा से जग पाता है) वह प्रभु-भक्त बादशाहों का भी बादशाह हो जाता है। २५

पौड़ी २६

अमुल गुण अमुल वापार अमुल वापारीए अमुल भंडार ।
अमुल आवहि अमुल लै जाहि अमुल भाय अमुला समाहि ।
अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ।
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ।
अमुलो अमुलु आखिआ न जाय आखि आखि रहे लिव लाय ।

आखहि वेद पाठ पुराण आखहि पड़े करहि वखिआण ।
आखहि बरमे आखहि इंद आखहि गोपी ते गोविंद ।
आखहि ईसर आखहि सिध आखहि केते कीते बुध ।
आखहि दानव आखहि देव आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ।
केते आखहि आखणि पाहि केते कहि कहि उठि उठि जाहि ।
एते कीते होरि करेहि ता आखि न सकहि केई केय ।
जेवडु भावै तेवडु होय नानक जाणै साचा सोय ।
जे को आखै बोलु विगाड़ ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ।।२६

ईश्वर-प्रदत्त गुण अमूल्य हैं और उनका आदान-प्रदान भी अमूल्य है। गुणों के सौदागर और गुणों के ख़ज़ाने भी अमूल्य हैं, गुणों के ग्राहक भी अमूल्य हैं; जो संगत के रूप में आकर क्रय-विक्रय करते हैं, वो भी अमूल्य हैं। उन गुणों से प्रेम करनेवाले और उनमें लीन हो जानेवाले भी अमूल्य हैं। प्रभू का धर्म और न्याय अमूल्य है, उसकी तौल और कसौटी भी अमूल्य है। उसकी कृपा और कृपादृष्टि प्राप्त करनेवाले भी अमूल्य हैं। ऐसे अमूल्य गुणों के सागर, ईश्वर के बारे में क्या कहें; तथापि प्रभू-सुयश का गान करके सज्जन पुरुष अपने जीवन को सफल कर रहे हैं। वेदों-पुराणों के पठन-पाठन और व्याख्यान-कर्त्ताओं का भी यही कथन है; ब्रह्मा-इन्द्र और अनेक देवी-देवता भी यही बखानते हैं; गोपियाँ और कृष्ण भी यही स्तुति करते हैं; सिद्ध और शिवजी भी यही कहते हैं; उसकी कृपा के बल पर बुद्धिवान् व्यक्ति भी यही कहते हैं; राक्षस, देव, दानव भी यही कहते हैं; देवपुरुष, मुनिजन और गुरु-सेवक भी यही कहते हैं। कई कह रहे हैं और कहने का यत्न कर रहे हैं; कई कह-कहकर उठ-उठकर (इस लोक से) जा भी चुके हैं। (सबका कथन यही है कि) प्रभू ने सब कुछ किया है और करेगा। परन्तु फिर भी उसके बारे में पूर्णरूपेण कोई नहीं कह सका। वह स्वयं जितना है उतना वर्णन प्रभू स्वयं ही कर सकता है। यदि कोई मूर्ख व्यक्ति बड़बोला उसका वर्णन करने का साहस करता भी है तो उसको मूर्ख-शिरोमणि ही कहना चाहिए। २६

### पौड़ी २७

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले ।
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे ।

गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ।
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ।
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ।
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे ।
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ।
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ।
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ।
गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ।
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ।
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ।
सेई तुधु नो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे ।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
है भी होसी जाय न जासी रचना जिनि रचाई ।
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ।
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ।। २७

हे ईश्वर! तेरा ठौर-ठिकाना कौन सा है, जहाँ बैठकर तू सबकी पालना कर रहा है ? अनेकों वाद्य-यत्रों के विशेषज्ञ उनका वादन कर रहे हैं। राग-रागनियों में तेरा यश गा रहे हैं। हे प्रभू ! पवन, पानी, अग्नि और धर्मी राजा, सभी तेरी महिमा गा रहे हैं। चित्रगुप्त, धर्मराज, ब्रह्मा-विष्णु-महेष, देवी-देवता सभी तेरा यश गायन कर रहे हैं और शोभा प्राप्त कर रहे हैं। सिंहासन पर विराजमान राजा इन्द्र अपने दरबारी देवताओं, सिद्ध पुरुषों, समाधिस्थ पुरुषों आदि के साथ तेरे यश का गान कर रहे हैं, चिन्तन कर रहे हैं। जती-सती सूरवीर, योद्धा तेरा यश गान कर रहे हैं। विद्वान्, पंडित, ऋषी-महर्षि, सभी युगों-युगों से वेदों में लिखे धर्मानुसार तेरा गायन करते चले आ रहे हैं। सुन्दर रूपवान्, स्वर्ग, नर्क, पाताल एवं मृत्युलोक के वासी तेरा ही यशगान कर रहे हैं। समुद्रमंथन से निकले चौदह रत्न, अड़सठ तीर्थ, महाबली योद्धा सूरवीर, चारों दिशाएँ अर्थात् पृथ्वी और आकाश—सारी सृष्टि तेरा यश गान कर रही है।

स्नानतो यत् फलं त्वस्मिंस्तत्क्षणादेव दृश्यते । काकाः पिका भवन्त्यस्माद् बकाश्च कलहंसकाः ।।
न मन्येताद्भुतं किञ्चिन्निशम्य फलमीदृशम् । सत्सङ्गतेर्हि महिमा न कदाप्यावृतः क्वचित् ।।
वाल्मीकिर्नारदोऽगस्त्य इति सर्वे महर्षयः । स्वमुखैरेव जगदुः स्वं स्वं वृत्तमनेकशः ।।
पयश्चराः स्थलचरास्तथैव च नभश्चराः । नानाविधा जीवपुञ्जा जडास्तद्वत्सचेतनाः ।।
तेषु येन यदा यत्र यथा चैव प्रयत्नतः । कीर्तिर्मतिर्गतिर्भूतिर्भद्रता वा समर्जिता ।।
स सर्वोऽपि प्रभावोऽस्ति सतां सङ्गस्य निश्चितम् । प्राप्तेरुपाय एतेषां नोक्तोऽन्यो लोकवेदयोः ।।
सत्सङ्गेन विना नैव विवेको जायते क्वचित् । स सत्सङ्गोऽपि सुलभो नास्ति रामकृपां विना ।।
सत्सङ्गो मूलमित्युक्तो मङ्गलस्य मुदस्तथा । साधनानि तु पुष्पाणि सत्सङ्गाप्तिःफलं स्मृतम् ।।
कुधातुर्जायते स्वर्णं स्पर्शात् स्पर्शमणेर्यथा । शठाः सरलतां यान्ति तथा सत्सङ्गतेः क्षणात् ।।
कुसङ्गतिं गताः सन्तः कदाचिद् दैवतो यदि । तेऽनुयान्ति गुणानेव मणीन् फणिगणा इव ।।
विधि-विष्णु-स्थाणु-विज्ञ-कवीनामपि भारती । महिमानं सज्जनानां वक्तुं सङ्कोचमास्थिता ।।
न शक्यन्ते मणिगुणा वक्तुं शाकविशा यथा । न शक्यन्ते मया वक्तुं स तेषां महिमा तथा ।।

**येषां हितो वाप्यहितो न कोऽपि तान् सज्जनान् नौमि समानचित्तान् ।**
**यथाञ्जलिस्थानि सुमान्यभेदं कुर्वन्ति हस्तौ सुरभी शुभानि ।। ३ ।। क**

**जगद्धिताः सन्त - उदारचित्तास्तेषामिति स्नेहगुणौ विदित्वा ।**
**तान् मानये रामपदाब्जसक्तिं दद्युश्च ते बालवचो निशम्य ।। ३ ।। ख**

वन्दे खलगणान् भूयः सत्त्वसंयुतभावतः । अनुकूलायाऽपि वामा विना हेतुं भवन्ति ये ।।
येषामभिमतो लाभः परकीयहितक्षयः । परोच्छेदे प्रहर्षोऽस्ति विषादश्च स्थितौ मतः ।।
यशःपूर्णेन्दवे राहुतुल्याः केशव-शूलिनोः । सहस्रभुजवद् वीराः परस्याकार्यसाधने ।।
नेत्रैः सहस्रसङ्ख्याकैः पश्यन्ति परदूषणम् । येषां चित्तं मक्षिकास्ति परेषां हितसर्पिषे ।।
अग्नयो दाहके तापे कोपे महिषवाहनाः । पापदोषधनानां ये धनिनो गुह्यकेश्वराः ।।
सर्वेषां श्रेयसे येषां धूमकेतुरिवोदयः । कुम्भकर्णसमा लोके निद्रिता एव ये हिताः ।।
यथा कृषिं नाशयित्वा नश्यन्ति करकाः स्वयम् । तथान्यकार्यनाशाय खलास्तनुमपि स्विकाम् ।।
मुखैः सहस्रैः सक्रोधा वर्णयन्त्यन्यदुर्गुणान् । ये वन्दे तान् खलान् नित्यं शेषनागस्वरूपिणः ।।
पृथुपार्थिवतुल्यांस्तान् प्रणमामि पुनः खलान् । कर्णैर्दशसहस्रैर्ये शृण्वन्त्यन्याघसञ्चयान् ।।
पुरुहूतेन सदृशांस्तान् मुहुर्विनयाम्यहम् । सेनासुरा हिता मान्या येषां तु प्रतिवासरम् ।।
रोचते सर्वदा येभ्यः कुलिशं वचनात्मकम् । दोषान् परेषां पश्यन्ति सहस्रैर्नयनैश्च ये ।।

**मध्यस्थमित्रारिहितं निशम्य खला ज्वलन्तीति मतास्ति रीतिः ।**
**इत्थं विदित्वाञ्जलिबद्धपाणिः सप्रेम तान् मानयते जनोऽयम् ।। ४ ।।**

बहुप्रकारो विनयः स्वतः सम्पादितोमया । किन्तु ते न भविष्यन्ति प्रमत्ता अपकर्मणि ।।
अत्यन्तेनानुरागेण पालिता अपि वायसाः । किं भविष्यन्ति कुत्रापि ते कदापि निरामिषाः ।।
पादाविदानीं वन्देऽहं सतां चैवासतामपि । दुःखप्रदावुभौ किन्तु कोऽपि भेदस्तयोर्मतः ।।
तत्रैकस्तु वियोगस्य क्षण एव हरत्यसून् । ददाति दारुणं दुःखं योगस्यैव क्षणेऽपरः ।।
साध्वसाधू जगत्यस्मिन्नुत्पद्येते समं सदा । गुणा भिन्नास्तयोः किन्तु जलौका पद्मयोरिव ।।
सुधया सुरया तुल्यौ साध्वसाधूस्थितावुभौ । किन्त्वभिन्नो जगत्सिन्धुस्तयोर्जन्मप्रदायकः ।।
सज्जना दुर्जनाश्चापि स्वस्वकर्मानुसारतः । विख्यातं यल्लभन्ते ते सुयशोऽपयशोधनम् ।।
सुधासुधांशुसाधूनां गीर्वाणसरितस्तथा । लालासरिद्व्याधकलिकदोषाग्नीनां विषस्य च ।।
गुणानवगुणान् सर्वे जना जानन्ति निश्चितम् । किन्तु यद् रोचते यस्मै तत् तस्मै शोभनं मतम् ।।

**दो०—भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।**
**सुधा सराहिअ अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु॥ ५॥**

खल - अघ - अगुन - साधु - गुनगाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन - दोष बखाने। संग्रह - त्याग न बिनु पहिचाने॥
भलेउ - पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन - दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद - इतिहास - पुराना। बिधि-प्रपंचु गुन-अवगुन-साना॥
दुख-सुख, पाप-पुन्य, दिन-राती। साधु - असाधु, सुजाति - कुजाती॥
दानव - देव, ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु, माहुरु मीचू॥
माया - ब्रह्म, जीव - जगदीसा। लच्छि-अलच्छि, रंक-अवनीसा॥
कासी - मग, सुरसरि - क्रमनासा। मरु - मारव, महिदेव - गवासा॥
सरग - नरक, अनुराग - बिरागा। निगमागम गुन - दोष - बिभागा॥

**दो०—जड़ - चेतन गुन - दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।**
**संत हंस - गुन गहहिं पय परिहरि बारि - बिकार॥ ६॥**

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति-बस चुकइ भलाईं॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष, बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष - प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
कियेहुँ कुबेषु साधु - सनमानू। जिमि जग जामवंत - हनुमानू॥
हानि कुसंग, सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन - प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच-जल-संगा॥
साधु - असाधु - सदन सुक - सारीं। सुमिरहिं राम, देहिं गनि गारीं॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल, अनल, अनिल - संघाता। होइ जलद जग - जीवनदाता॥

**दो०—ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ कुजोग - सुजोग।**
**होहिं कुबस्तु - सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥ ७ (क)॥**

**सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम - भेद बिधि कीन्ह।**
**ससि-सोषक-पोषक समुझि, जग जस-अपजस दीन्ह॥ ७ (ख)॥**

**जड़ - चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।**
**बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग - पानि॥ ७ (ग)॥**

**देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, पितर, गंधर्ब।**
**बंदउँ किन्नर, रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब॥ ७ (घ)॥**

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल-थल-नभ-बासी॥

**साधुः सदैवाऽऽश्रयते निकामं साधुत्वभावं विपरीतमन्यः ।**
**अमृत्युदानेन सुधा प्रशस्या मृत्युप्रदानेन विषं प्रशस्यम् ।। ५ ।।**

खलानां पापदोषाणां सतां च गुणसम्पदाम् । कथा अपारा गम्भीरा भूतलेऽम्भोधयो मताः ।।
अतो दोषा गुणास्तेषां केचिदेवात्र वर्णिताः । विना परिचयं तेषां न स्यातां त्यागसङ्ग्रहौ ।।
विधात्रा रचिताः सर्वे सज्जना दुर्जनास्तथा । विचार्य गुणदोषौ तु श्रुत्या पार्थक्यमाहितम् ।।
इतिहासाः पुराणानि वदन्ति श्रुतयस्तथा । गुणावगुणसंयुक्ता यद् विधेः सृष्टिरीदृशी ।।
सुखदुःखे पुण्यपापे वासरो रजनी तथा । साध्वसाधू शुभा जातिस्तथैवाशुभरूपिणी ।।
अमरा राक्षसाश्चैव उत्तमा अधमा अपि । सुधा हालाहलं रम्यं जीवनं मरणं तथा ।।
माया शुद्धमपि ब्रह्म जीवश्च जगदीश्वरः । एवं लक्ष्मीरलक्ष्मीश्च दरिद्रः पृथिवीपतिः ।।
काशी मगसरो गङ्गा कर्मनाशानदी तथा । मालवो मरुदेशश्च तथा भूदेवसौनिकौ ।।
स्वस्तथा नारकं स्थानं विरागो राग एव च । एतेषान्तु गुणा दोषा विभक्ता निगमागमैः ।।

**विनिर्मितं दोषगुणं जडञ्च चिदात्मकं विश्वमिदं विधात्रा ।**
**त्यक्त्वा विकाराख्यजलं तु सन्तो हंसा गुणाख्यं पय आपिबन्ति ।। ६ ।।**

हंसीयो दीयते धात्रा विवेकस्त्वीदृशोयदा । तदा दोषान् परित्यज्य गुणेष्वारज्यते मनः ।।
कालस्य प्रकृतेस्तद्वत् कर्मणश्चप्रभावतः । सन्तोऽपि मायावशगा भ्रश्यन्ति श्रेयसः क्वचित् ।।
ईशभक्ताः प्रमादं तं शोधयन्ति यथा सदा । दलयित्वा दुःखदोषान् ददते निर्मलं यशः ।।
तथा सत्सङ्गतो दुष्टा अपि कुर्वन्ति मङ्गलम् । किन्तु तेषां नित्यरूपो दुःस्वभावो न हीयते ।।
साधुवेषधरा ये स्युर्वञ्चका जगतीतले । तान् पूजयन्ति मनुजा वेषस्यैव प्रभावतः ।।
स स्यात् प्रकटितो दम्भस्त्वन्तं यावन्न निर्वहेत् । यथा राहो रावणस्य कालनेमेश्च लोकितम् ।।
साधवस्तु कुवेषेऽपि धृते पूजामवाप्नुयुः । जाम्बवानृक्षराजेन्द्रो मारुतिस्वाप्नुतां यथा ।।
हानिः कुसङ्गात्सत्सङ्गाल्लाभो भवति निश्चितम् । इदं ख्यातं श्रुतौ लोके जानते च समे जनाः ।।
गगनं याति धूलिस्तु पवनस्य प्रसङ्गतः । पङ्कत्वं याति सैवाधोगामितोयप्रसङ्गतः ।।
साधोरसाधोश्च गेहे विहङ्गाः शुकसारिकाः । रटन्ति रामं दुश्शब्दान् प्रत्येकञ्च गदन्ति ते ।।
धूमः कुसङ्गतेर्हेतोः कज्जलं कथ्यते जनैः । स तु मञ्जुमसीभूतः पुराणं लिखति ध्रुवम् ।।
स जलानलवातानां सङ्गात् सङ्घातरूपवान् । पयोदः सञ्जीवनस्य दाता लोकाय जायते ।।

**ग्रहौषधी वातजले पटश्च सुसङ्ग - दुःसङ्गगताः पदार्थाः ।**
**भवन्ति सद्वस्तु कुवस्तु चेत्थं जानन्ति शिष्टाः सुविचारयुक्ताः ।। ७ ।। क**

**तुल्यप्रकाशान्धतमोयुतौ द्वौ पक्षौ कृतं नाम पृथग् विधात्रा ।**
**शोषञ्च पोषं शशिनो विभाव्य यशोऽयशो दत्तमिदं जनेन ।। ७ ।। ख**

**चराचरा ये जगतीह जीवास्तान् राममात्रान् परिबुध्य सर्वान् ।**
**तेषां समेषामपि पादपद्म-पुञ्जानहं सन्ततमानमामि ।। ७ ।। ग**

**सुरासुराहीन् पितृपक्षिमर्त्यान् गन्धर्व - किम्पूरुष - रात्रिगांश्च ।**
**सदैव वन्दे सकलानपीमान् कुर्वन्त्विदानीं मयि सुप्रसादम् ।। ७ ।। घ**

चतुर्युक्ताशीतिलक्षसङ्ख्यजातिषु संस्थिताः । चतुर्विधा ये च जीवाः स्वेदाण्डोद्भिज्जरायुजाः ।।

सीय - राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग - पानी ॥
जानि कृपाकर किंकर मोहू । सब मिलि करहु छाड़ि छल-छोहू ॥
निज बुधि - बल - भरोस मोहि नाहीं । तातें बिनय करउँ सब - पाहीं ॥
करन चहउँ रघुपति - गुनगाहा । लघु मति मोरि, चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ । मन - मति रंक, मनोरथ राऊ ॥
मति अति नीच, ऊँचि रुचि आछी । चहिअ अमिअ, जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बालबचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर, कुटिल, कुबिचारी । जे पर - दूषन - भूषनधारी ॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर - भनिति सुनत हरषाहीं । ते बर - पुरुष बहुत जग नाहीं ॥
जग बहु नर सर-सरि-सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई । देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥

**दो०—भाग छोट, अभिलाषु बड़, करउँ एक बिस्वास ।**
**पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास ॥ ८ ॥**

खल - परिहास होइ हित मोरा । काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥
हंसहि बक, दादुर चातकही । हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही ॥
कबित - रसिक न रामपद - नेहू । तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा - भनिति, भोरि मति मोरी । हँसिबे जोग, हँसें नहिं खोरी ॥
प्रभु - पद प्रीति न सामुझि नीकी । तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
हरि-हर-पद रति, मति न कुतरकी । तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की ॥
राम - भगति - भूषित जियँ जानी । सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥
कबि न होउँ, नहिं बचन - प्रबीनू । सकल कला सब बिद्या - हीनू ॥
आखर, अरथ, अलंकृति नाना । छंद, प्रबंध, अनेक बिधाना ॥
भाव-भेद, रस-भेद अपारा । कबित-दोष-गुन बिबिध प्रकारा ॥
कबित - बिबेक एक नहिं मोरें । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें ॥

**दो०—भनिति मोरि सब गुन-रहित, बिस्व-बिदित गुन एक ।**
**सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्ह कें बिमल बिबेक ॥ ९ ॥**

एहि महँ रघुपति-नाम उदारा । अति पावन पुरान-श्रुति-सारा ॥
मंगल - भवन, अमंगल - हारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥
भनिति बिचित्र सुकबि - कृत जोऊ । राम - नाम - बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना बर - नारी ॥
सब गुन - रहित कुकबिकृत बानी । राम-नाम-जस-अंकित जानी ॥
सादर कहहिं, सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥
जदपि कबित - रस एकउ नाहीं । राम - प्रताप प्रगट एहि माहीं ॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा । केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा ॥
धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु - प्रसंग सुगंध बसाई ॥
भनिति - भदेस, बस्तु भलि बरनी । राम - कथा जग - मंगलकरनी ॥

सीतारामममयं ज्ञात्वा सर्वं तैः पूरितं जगत् । प्रणमामि मुहुः कृत्वा साञ्जली युगलौ करौ ॥
ज्ञात्वा मां सेवकं सर्वे भवन्तोऽत्र कृपाकराः । विहाय कपटं छिद्रं मयि कुर्वन्तु सत्कृपाम् ॥
निजधीबलविश्वासो मम चित्ते न विद्यते । विनयानुनयौ कुर्वे सर्वेषां पुरतस्ततः ॥
निरूपयितुमिच्छामि गुणान् रघुपतेरहम् । मतिर्मन्दास्ति मेऽगाधं चरितं राघवस्य तु ॥
लेशोऽप्युपायस्य नैव कोऽपि विज्ञायते मया । मनोबुद्धी दरिद्रे मे किन्तु राजा मनोरथः ॥
मतिर्ममाधमातीव वाञ्छातीव समुन्नता । तत्क्रमप्यत्र लभ्यं न वाञ्छा त्वमृतपानगा ॥
धृष्टतां मे क्षमिष्यन्ति सर्वे सत्पुरुषा भुवि । बालवाक्यानि च मम श्रोष्यन्ति प्रेमपूर्वकम् ॥
यथा ग्रस्तं वदति यद्वचनं कोऽपि बालकः । तन्मातापितरौ नूनं शृणुतो हृष्टमानसौ ॥
किन्तु क्रूरा हसिष्यन्ति कुटिलाः कुविचारिणः । ये परेषां दूषणानि भूषणानि दधत्यदः ॥
काव्यं स्वरचितं कस्मै विश्वस्मिन्नैव रोचते । तद् भवेत्सरसं वापि नीरसं सर्वथा भवेत् ॥
परकीयं तु काव्यं ये श्रुत्वा हृष्यन्ति तत्क्षणात् । त उत्तमजना लोके विद्यन्ते नाधिका ध्रुवम् ॥
सरोनदीसमा नैके वर्तन्ते भद्र भूतले । जलं सम्प्राप्य ये वृद्धचा वर्धन्ते निजया जनाः ॥
कोऽप्येव किन्तु भवति सज्जनः सागरो यथा । योऽवलोक्य विधुं पूर्णं परोत्कर्षेण वर्धते ॥

**दैवं तु मन्दं परमोऽभिलाषो विश्वास एकोऽस्ति परं मदीयः ।**
**हृष्टा भविष्यन्ति निशम्य सन्तो दुष्टा करिष्यन्ति तथोपहासम् ॥ ८ ॥**

खलैः सम्पादितः किन्तु परिहासोऽपि मे हितः । वाचं पिकस्यापि काकाः कटुकां निर्दिशन्ति हि ॥
यथा हंसान् बका भेकाश्चातकांश्चैव नित्यशः । विहसन्ति तथा वार्तां विमलां मलिनाः खलाः ॥
न ये सहृदया रामपादप्रेमयुता न वा । तेभ्योऽपि हास्यरसदा स्यादेषा कविता मम ॥
आदौ भाषाकृतिरियं मन्दा च मम शेमुषी । न कोऽपि दोषस्तेषां यदुपहास्यां हसन्ति ते ॥
हरिपादप्रेम येषां नास्ति वा सुष्ठु बोधनम् । तैः श्रूयमाणा तेभ्यो न कथेयं रुचिराभवेत् ॥
येषां हरेर्हरस्यापि पादयोः प्रेम वर्तते । मतिः कुतर्कहीना च तेभ्यो रामकथा प्रिया ॥
इमां कथां रामभक्त्या ज्ञात्वा चित्ते सुभूषिताम् । श्रोष्यन्ति सज्जना वाण्या प्रशंसन्तोऽतिभद्रया ॥
कविर्नास्मि न वा वाक्यरचनाकुशलोऽस्म्यहम् । विविधाभिः सुविद्याभिः कलाभिश्च विना स्थितः ॥
वर्णा नानाविधा अर्था अलङ्कारास्तथैव च । छन्दस्सु नानारूपेषु रचनाऽनेकरूपिणी ॥
भावभेदा असङ्ख्येया रसभेदास्तथैव च । कविताया असङ्ख्येया भेदाश्च गुणदोषगाः ॥
एतेष्वेकस्यापि नैव विवेको मयि विद्यते । लिखित्वा कर्गदे नूत्ने वच्मि सत्यं मुहुर्मुहुः ॥

**कृतिर्मदीयाऽन्यगुणैर्विहीना त्वेकोऽतिविख्यातगुणः स्थितोऽस्याम् ।**
**विचार्य तं निर्मलबोधयुक्ताः श्रोष्यन्त्यवश्यं सुधियोऽमुमस्मात् ॥ ९ ॥**

अस्यां रघुपतेर्नाम वर्तते पावनं परम् । पुराणानां श्रुतीनां च सारं रम्यं तथोन्नतम् ॥
निकेतनं मङ्गलस्य सकलामङ्गलापहम् । निरन्तरं जपति यद् गिरिजासहितः शिवः ॥
यात्युत्कृष्टा सुकविना कृतापि कविता मता । रामनाम विना सा तु कदाप्यत्र न शोभते ॥
यथा विधुमुखी काचिद् बहुधा भूषितापि सा । शाट्यादिरूपवसनं विना नैवात्र शोभते ॥
किन्तु हीनामपि गुणैः कवितां कुकवेर्भुवि । रामस्य नाम्ना यशसा चाङ्कितां वीक्ष्य सद्बुधाः ॥
आदरेण श्रावयन्ति शृण्वन्ति च मुदा युताः । सन्तो गुणग्राहिणो हि भवन्ति मधुपा इव ॥
यद्यप्येकोऽपि न रसो वर्ततेऽस्यां कृतौ मम । तथापि प्रकटो रामप्रतापोऽत्र सदा स्थितः ॥
अयमेव दृढश्चित्ते मम विश्वास आगतः । महत्त्वं को न सम्प्राप्तः सत्सङ्गस्य प्रभावतः ॥
सहजां कटुतां त्यक्त्वा धूमोऽप्यगुरुसङ्गतः । यथा सुगन्धो भवति तथैषा कविता मम ॥
यद्यपीयं सुभद्रा न तथाप्यस्यां गुणोऽस्ति यत् । जगच्छ्रेयःकारि-रामकथावस्तु निरूपितम् ॥

छं०—मंगल-करनि कलि-मल-हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता-सरित की, ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस-संगति-भनिति भलि होइहि सुजन मनभावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम-जस-संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय-प्रसंग॥ १०(क)॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय-राम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥ १०(ख)॥

मनि, मानिक, मुकुता - छबि जैसी। अहि, गिरि, गज-सिर सोह न तैसी॥
नृप - किरीट, तरुनी - तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहिं सुकबि - कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत, अनत छबि लहहीं॥
भगति - हेतु बिधि - भवन बिहाई। सुमिरत सादर आवति धाई॥
राम - चरित - सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि-जस कलि-मल-हारी॥
कीन्हें प्राकृत - जन - गुन - गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु, मति सीप समाना। स्वाति सारदा, कहहिं सुजाना॥
जौं बरषइ बर - बारि - बिचारू। होहिं कबित - मुकुतामनि चारू॥

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं राम-चरित बर-ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल - उर, सोभा अति अनुराग॥ ११॥

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब - बायस, बेष - मराला॥
चलत कुपंथ बेद - मग छाँड़े। कपट-कलेवर, कलि-मल-भाँड़े॥
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन, कोह, काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग, धरमध्वज, धंधक - धोरी॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा, पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥
समुझि बिबिधि-बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़, मति-रंका॥
कबि न होउँ, नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम - गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत - संसारा॥
जेहिं मारुत, गिरि - मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम - प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

दो०—सारद, सेस, महेस, बिधि, आगम, निगम, पुरान।
नेति - नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ १२॥

सब जानत प्रभु - प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन-प्रभाउ भाँति-बहु भाषा॥
एक, अनीह, अरूप, अनामा। अज, सच्चिदानंद, पर - धामा॥

कलेर्मलस्य हारिणी शुभा च राघवी कथा ब्रवीति काव्यगां गतिं तुलस्यनन्यदासकः ।
कृतिप्रवाहिनी हि मे पवित्रगङ्गया समा स्थिताऽपि वक्रवाहिनी तथापि सर्वपूजिता ॥
सुरामकीर्तिसङ्गमाद्भुवेदियं सुरूपिणी सतां रुचेर्विधायिनी स्मृताऽपि पापहारिणी ।
यथा शिवस्य वर्ष्मणि श्मशानभूतिरुत्तमा तथैव सर्वतो वरा रघूत्तमस्य सत्कथा ॥

अतीव रम्या कविता मदीया श्रीरामकीर्ते - र्वरसङ्गमेन ।
वन्द्यं यथा स्यान्मलयेन साकं काष्ठं विचारेण विनाऽपि लोकैः ॥ १० ॥ क

सीतेशयोर्ग्राम्यगिराऽपि बद्धं शृण्वन्ति गायन्ति यशः सुबोधाः ।
शुभ्रं पयः श्यामगवापि सूतं यथातिगुण्यं सकलाः पिबन्ति ॥ १० ॥ ख

मणिमाणिक्यमुक्तानां यादृग्भा भासते स्वतः । स्वहेतुषु न सा तादृग् कालाद्रिगजमूर्धसु ॥
अवाप्य मुकुटं राज्ञस्तरुण्याश्च कलेवरम् । नूनमेतेऽधिकां कान्ति लभन्ते सकला अपि ॥
बुधा वदन्ति यत् तद्वत् काव्यं सुकविनिर्मितम् । उत्पद्यतेऽन्यत्र नूनमन्यत्र लभते रुचम् ॥
हेतुना भक्तिरूपेण विहाय ब्रह्मणः पदम् । धावित्वा शारदायाति स्मृता तु कविना क्षणात् ॥
विनाऽवगाहनं रामचरित्राख्ये सरोवरे । स तच्छ्रमो नापगच्छेत्कोटियत्नान्तरैरपि ॥
इत्थं विचार्य कवयः कोविदाश्च जना भुवि । हारकं कलिदोषाणां गायन्ति श्रीहरेर्यशः ॥
क्रियमाणे प्राकृतस्य जनस्य गुणवर्णने । अनुसन्तप्यते शीर्षं धुन्वन्ती शारदा भृशम् ॥
हृदयं सागरं तद्वद् बुद्धिं मौक्तिकशुक्तिकाम् । शारदामपि च स्वातीं कथयन्ति बुधा इह ॥
अस्मिन् सुयोगे चेद् वर्षेद् विचारसलिलं शुभम् । तर्हि जायेत कविता मुक्ता लोकहितावहा ॥

आविध्य युक्त्या सुजनाः सुगुम्फ्य ताः सुन्दरे रामचरित्रसूत्रे ।
स्वे निर्मले वक्षसि धारयन्ति वरानुरागः सुषमा यथा स्यात् ॥ ११ ॥

कराले कलिकाले ये प्राणिनो जनिमागताः । वायसव्यवहारा ये वेषतो हंसरूपिणः ॥
वेदमार्गं परित्यज्य कुमार्गं समुपाश्रिताः । मूर्तिमन्तश्छला ये च कलिकल्मषभाजनम् ॥
ख्यापयन्तो रामभक्तिं स्विकां मुष्णन्ति ये जनान् । किङ्कराः सततं ये च लोभस्य क्रोधकामयोः ॥
तेष्वीदृशेषु लोकेषु पुरोगण्योऽस्मि भूतले । धृष्टधर्मध्वजशठेष्वप्यादौ गण्यतां गतः ॥
स्वकीयान् सकलान् दोषान् कथयिष्यामि चेदहम् । अतिवर्धिष्यति कथा पारयिष्ये न तर्हि ताम् ॥
तस्मादेव मया दोषाः केचिदेव निरूपिताः । ज्ञास्यन्ति चतुरा लोकाः स्वल्पेनैवापि निश्चितम् ॥
अमुं नानाप्रकारं मे विनयं परिबुद्ध्य च । श्रुत्वा कथामिमां कोऽपि दोषं दास्यति न क्वचित् ॥
एवं सत्यपि ये कञ्चित् करिष्यन्तीह संशयम् । मत्तोऽपि ते जडतरा धीदरिद्राश्च निश्चितम् ॥
नाहं कवयिता वापि चतुरः ख्यापितो जनैः । किन्तु रामस्य गायामि गुणान् बुद्धिबलं यथा ॥
क्वानन्तानि चरित्राणि रघुनाथस्य भूतले । क्व च संसारभोगेषु समासक्ता मतिर्मम ॥
उड्डीयन्ते मारुतेन येन मेरूपमा नगाः । तूलस्य तस्य पुरतो गणना का मता भवेत् ॥
ज्ञात्वा श्रीरामचन्द्रस्य प्रभुतां त्वन्तवर्जिताम् । तत्कथारचने चित्तं विकलं जायते बहु ॥

सरस्वती शेषशिवौ विधाता वेदाः पुराणानि च शास्त्रपुञ्जाः ।
यं नेति नेतीति वदन्तएव गायन्ति यस्यार्थगुणान् सदैव ॥ १२ ॥

सर्वे जानन्ति रामस्य प्रभुतां वागगोचराम् । तथापि नावशिष्टोऽस्ति कोऽपि तद्वर्णनं विना ॥
एतस्मिन् विषये श्रुत्या त्वयं हेतुर्निरूपितः । सज्जनैर्बहुधा गीतः प्रभावो भजनस्य यत् ॥
यः परेशोऽनीह एको नामरूपविवर्जितः । अजन्मा च परं धाम सच्चिदानन्दविग्रहः ॥

ब्यापक, बिस्वरूप, भगवाना। तेहिं धरि देह, चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन-हित लागी। परम कृपाल, प्रनत-अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि, कीन्ह न कोहू॥
गई बहोर, गरीब-नेवाजू। सरल, सबल, साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि-जस अस जानी। करहिं पुनीत, सुफल निज बानी॥
तेहिं बल मैं रघुपति-गुन-गाथा। कहिहउँ नाइ राम-पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

**दो०—अति अपार जे सरित-बर, जौं नृप सेतु कराहिं।**
**चढ़ि पिपीलिकउ परम-लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ १३॥**

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति-कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि-पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि-सुजस बखाना॥
चरनकमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति-गुन-ग्रामा॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि-चरित बखाने॥
भए, जे अहहिं, जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागें॥
होहु प्रसन्न, देहु बरदानू। साधु-समाज भनिति-सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बालकबि करहीं॥
कीरति, भनिति, भूति, भलि सोई। सुरसरि-सम सब कहँ हित होई॥
राम-सुकीरति, भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥
तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट-पटोरे॥
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहिं अनुहरै सुबानी॥

**दो०—सरल कबित, कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।**
**सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥ १४(क)॥**

**सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मति-बल अति थोर।**
**करहु कृपा, हरि-जस कहउँ, पुनि-पुनि करउँ निहोर॥ १४(ख)॥**

**कबि-कोबिद, रघुबर-चरित मानस-मंजु-मराल।**
**बालबिनय सुनि, सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल॥ १४(ग)॥**

**सो०—बंदउँ मुनि-पद-कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ।**
**सखर सुकोमल मंजु, दोष-रहित दूषन-सहित॥ १४(घ)॥**

**बंदउँ चारिउ बेद, भव-बारिधि-बोहित सरिस।**
**जिन्हहि न सपनेहुँ खेद, बरनत रघुबर-बिसद-जसु॥ १४(ङ)॥**

**बंदउँ बिधि-पद-रेनु, भवसागर जेहिं कीन्ह, जहँ।**
**संत-सुधा-ससि-धेनु-प्रगटे खल-बिष-बारुनी॥ १४(च)॥**

**दो०—बिबुध, बिप्र, बुध, ग्रह-चरन, बंदि कहउँ कर जोरि।**
**होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि॥ १४(छ)॥**

# गेहूँ खरीद की सरकारी योजना

## किसान और उपभोक्ता की अपनी योजना है

## इसकी सफलता में दोनों का लाभ है

### किसान गेहूँ कहाँ बेचें ?

राज्य सरकार, सहकारी संघ और भारतीय खाद्य निगम द्वारा खोले गये क्रय-केन्द्र ही केवल गेहूँ की थोक खरीद करेंगे। खरीदारी साल भर होगी। किसान थोक में गेहूँ इन्हीं क्रय-केन्द्रों पर बेचें।

ये एजेंसियाँ किसानों से हर किस्म का गेहूँ प्रतिदिन खरीदेंगी। किसान चाहे तो बिनावट का अन्न अपने साथ वापस ले जा सकता है, लेकिन यदि वह उसको बेचना चाहेगा तो सरकार उसकी खरीद का भी प्रबंध मुर्गियों और पशुओं के उपयोग के लिए कर लेगी।

किसान को अपने गाँव से मंडियों तक गेहूँ बेचने के लिए लाने पर कोई रोक-टोक नहीं है। लेकिन गेहूँ प्रदेश के बाहर कोई भी नहीं ले जा सकता है।

### किसान को क्या मूल्य मिलेगा ?

औसत किस्म के लाल देशी गेहूँ का ७४ रुपया, सफ़ेद मेक्सिकन और समान किस्मों के गेहूँ का ७६ रुपया तथा उत्तम फार्म गेहूँ का ८२ रुपये प्रति कुन्तल मूल्य मिलेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार किसान को दो रुपये प्रति कुन्तल गेहूँ ढुलाई का भाड़ा और देगी। उनसे गाड़ी से गेहूँ उतराई, छनाई और मंडी शुल्क नहीं लिया जायगा। दी गई चुंगी टोल टैक्स या उतराई की रसीद पेश करने पर उसका भी भुगतान सरकार करेगी।

किसान को पूरी रकम आसानी से भुगतान हो जाने वाले बिएरर

कृ० प० उ०

चेकों द्वारा दी जाएगी। उसकी रकम से किसी प्रकार की कटौती नहीं की जाएगी।

## उपभोक्ता गेहूँ कहाँ से प्राप्त करें ?

राशन की दूकान से निर्धारित मात्रा में।

खुले बाजार में लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता से ४० किलो तक एक समय में।

रजिस्टर्ड परचूनी से २० किलो तक एक समय में।

वह स्वयं अपने उपभोग के लिए किसान से सीधा एक कुन्तल गेहूँ खरीद सकता है।

वह अपने गाँव से अपने खेत की उपज का एक कुन्तल गेहूँ एक समय में अपने शहर के निवास स्थान पर भी ला सकता है।

## कौन कितना गेहूँ रख सकता है और कितना बेच सकता है ?

किसान जितनी भी मात्रा में चाहे गेहूँ बेंचने के लिए क्रय-केन्द्र पर ला सकता है। लेकिन वह १० कुन्तल तक गेहूँ लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता को और दो कुन्तल तक रजिस्टर्ड परचूनी को और एक कुन्तल तक उपभोक्ता को बेच सकता है।

लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता १० कुन्तल तक एक वक्त में खरीद सकता है और ५० कुन्तल तक स्टाक कर सकता है।

रजिस्टर्ड परचूनी दो कुन्तल तक एक वक्त में खरीद सकता है और ५ कुन्तल तक स्टाक कर सकता है।

## योजना से क्या लाभ होगा ?

- किसान को वर्ष भर गेहूँ का उचित मूल्य मिलेगा।
- उपभोक्ता को वर्ष भर गेहूँ उचित कीमत पर मिलेगा।
- शिक्षित बेरोजगारों और मजदूरों को अधिक रोजगार मिलेगा।
- मूल्यों में स्थिरता आने से समाज के समस्त वर्ग लाभान्वित होंगे।

ग– ५४३८ सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

# चेचक से बचिए

इसके प्रकोप से कहीं आपका बच्चा यदि मृत्यु से बच गया, तो अन्धा, गूंगा, लंगड़ा व कुरूप न हो जाय ?

## बचाव के लिए

१ चेचक का टीका लगवाइए। यह टीका जन्म होने के बाद एक सप्ताह के अन्दर लगवाना उत्तम है।

२ अड़ोस-पड़ोस में चेचक का एक भी रोगी होने पर तुरन्त निकट के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा जनपद या नगर के स्वास्थ्य अधिकारी को रोगी के पूरे पते से अवगत कराइए, ताकि रोग का विस्तार रोका जा सके।

---

ग ५७२९ उपस्वास्थ्य सेवा निदेशक (राष्ट्रीय चेचक उन्मूलन कार्यक्रम), उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

# भारतीय संस्कृति सदा से एकता-परक रही है

सभी धर्मों का समान आदर
उसकी आधारशिला है!

अनेक जातियों, सम्प्रदायों, विचारों और निष्ठाओं की विषमताएँ भारतीय जीवन की ऊपरी सतह तक ही सीमित हैं।

भारत की आत्मा एक है।
उसका अंतरंग शुभ है।

उत्तर प्रदेश सरकार—

सभी जातियों, धर्मों और भाषाओं के त्वरित विकास कार्य—क्रमों को सफल बनाने के लिए जन-जन का आह्वान् करती है।

ग २७३६ सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

# स्वास्थ्य क्षेत्र की

# अभूतपूर्व उपलब्धियाँ

उत्तम स्वास्थ्य के लिए लक्ष्य की पूर्ति हेतु किये गये प्रयासों के फलस्वरूप प्राप्त कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ—

• 2,434 चिकित्सालय / औषधालय खुलना अर्थात् 24,250 जनसंख्या पर एक अस्पताल ।

• • 44,393 अन्तरंग उपचार हेतु शय्याओं की व्यवस्था ।

• • • 20 बाल रुजालय, 54 ब्लड बैंक, 40 पैथालोजी इकाइयाँ, 40 रेडियालोजी इकाइयाँ, 52 एनेस्थिसियोजी इकाइयाँ आदि विशेषीकृत सेवाओं का प्रविधान ।

• • • • प्राइवेट प्रैक्टिस पर रोक ।

• • • • • खाद्य पदार्थों और दवाइयों में मिलावट की रोकथाम के लिए लखनऊ में नियंत्रण-कक्ष (टे० नं० 22819) और 10 उड़नदस्तों की स्थापना ।

• • • • • • 3 लाख 20 हज़ार नसबन्दी और 51,695 लूपनिवेशन

उत्तम स्वास्थ्य की प्रप्ति प्रयत्न साध्य है ।

ग ५१९१ प्रसारित :— स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो

चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन निदेशालय, उ० प्र० लखनऊ ।

स्वराष्ट्र समृद्धये परिवारो नियोज्यताम

**प्रत्येक पुरुष का यह दायित्व है।**

● पत्नी को स्वरूप स्वस्थ और सुखी रखे।

● बच्चों को अच्छा भोजन, शिक्षा और स्नेह प्रदान करे।

**छोटे परिवार के आदर्श को जीवन में अपना कर परिवार एवं राष्ट्र की समृद्धि में सहायक हो।**

ग ६२३१ राज्य परिवार नियोजन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

# वाणी सरोवर

( अपने ढंग का निराला त्रैमासिक पत्र )

इस पत्र में हिन्दी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पारसी, बंगला, ओड़िया, मराठी, गुरमुखी, तमिळ, मलयाळम, असमी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड, सिन्धी, कश्मीरी और नेपाली के अनुपम ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद तथा देवनागरी लिपि में उनका मूल पाठ धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक शुल्क १०·०० मात्र। पाली, प्राकृत आदि का धारावाहिक कार्यक्रम भी शीघ्र ही अपनाया जायगा।

नवीन ग्राहक बननेवाले सज्जनों को सन् १९७० से १९७२ तक का शुल्क ३०·०० और इसी प्रकार वर्ष १९७३ के लिए १०·०० अर्थात् ४०·०० चार वर्ष के लिए भेजना उनके हित में होगा। बीते हुए बर्षों के अंक न मँगाने पर धारावाहिक चलनेवाले पहले से शुरू अनेक ग्रंथ उनके संग्रहालय में अपूर्ण रह जायँगे।

**जनवरी १९७३ के अंक से 'श्रीगुरुग्रंथ साहिब' हिन्दी-व्याख्या-सहित तथा 'रामचरितमानस' संस्कृत-पद्यानुवाद-सहित का प्रकाशन आरंभ हुआ है।**

प्रा० स्थान—भुवन वाणी ट्रस्ट ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३

आपकी बचत ही
सुखमय भविष्य की सबसे बड़ी गारंटी है ।

सोच विचार में समय नष्ट न करके
आज ही से
अपनी आय से आड़े वक्त के लिये अधिकाधिक
बचाना प्रारम्भ कीजिए
और
अपनी बचत पूँजी को राष्ट्रीय बचत योजना
के अन्तर्गत अपनी मन-पसन्द प्रतिभूतियों में जमा कीजिए ।
खरीदिए—
7-वर्षीय राष्ट्रीय बचत-पत्र
( द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ निर्गम )

इन बचत पत्रों पर आकर्षक ब्याज के साथ अन्य कर सम्बन्धी सुविधाएँ भी मिलती हैं ।

कृपया पूर्ण विवरण के लिए अपने जिले के जिला संगठन-कर्ता, राष्ट्रीय बचत से सम्पर्क स्थापित करें ।

ग ४८३८ राष्ट्रीय बचत निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

स्थापित वर्ष १९४९:५० फोन २५६३४ २२६९८

# उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

लखनऊ

१२, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

प्रदेश की १३४ सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था

गन्ना संघ व सदस्य समितियाँ लगभग २२ लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि-उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत प्रयत्नशील है ।

लघु सिचाई-साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधा-जनक बनाते हुये कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है ।

**आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना-संघ-प्रेस सदस्य-समितियों की मुद्रण-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।**

# फ़ार्म-४

## ( नियम ८ देखिए )

| | |
|---|---|
| १ प्रकाशन स्थान | ४०५/१२८ प्रभाकर निलयम्<br>चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३ |
| २ प्रकाशन अवधि | त्रैमासिक |
| ३ मुद्रक का नाम | नन्दकुमार अवस्थी |
| नागरिकता | भारतीय |
| पता | ४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३ |
| ४ प्रकाशक का नाम | नन्दकुमार अवस्थी |
| नागरिकता | आरतीय |
| पता | ४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३ |
| ५ संपादक का नाम | नन्दकुमार अवस्थी |
| नागरिकता | भारतीय |
| पता | ४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३ |
| ६ स्वामित्व | भुवन वाणी ट्रस्ट<br>४०५/१२८, 'प्रभाकर निलयम्'<br>चौपटियाँ रोड, लखतऊ-३ |

मैं, नन्दकुमार अवस्थी एतद्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

नन्दकुमार अवस्थी

ता० २२-४-७३

प्रकाशक,
मुख्यन्यासी-सभापति,
भुवन वाणी ट्रस्ट

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

# भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

**जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—**

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं०कां० १०—(सिंधी) स्वामी के सलोक
११—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१२—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१४—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत "शरीफ़ज़ाद:" मू० ४.००
१५—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—डॉ० शरर
१६—(गुरमुखी) श्री गुरु ग्रंथ साहब
१७—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ४.००
१८—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों के फ़ारसी-भाष्य (डॉ० ताराचंद द्वारा सम्पादित तथा ईरान में प्रकाशित 'सिर्रे अक्बर') का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१९—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हदीस)—(ज़ादें सफ़र)
२०—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०.००
२१—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
२२—इनके अतिरिक्त संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।

**ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—**

१—(अ़रबी) क़ुरआन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—

---

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक